

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180844

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP -23 -4-4-69-5 000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H82**
B57A Accession No. **P. G.**
H3100

Author **अटनागर, महेन्द्र**

Title **अभिनव संकांकी** . 1963 .

This book should be returned on or before the date
last marked below

अभिनव एकांकी

प्रतिनिधि हिन्दी-एकांकियों का सकलन

सम्पादक

डा० महेन्द्र भटनागर

एम. ए., पी-एच. डी.

कैलाश पुस्तक सदन

हमीदिया रोड, भोपाल

प्रकाशक :

कैलाश पुस्तक सदन

हमीदिवा रोड, भोपाल

मुख्य विक्रेता —

१. कैलाश पुस्तक सदन,

पाटनकर बाज़ार, ग्वालियर

२. लायल बुक डिपो, ग्वालियर

३. गया प्रसाद एण्ड संस, आगरा

मूल्य रु० ४.००

प्रथम संस्करण १९६३

मुद्रक .

साधना प्रेस, लखर

भूमिका

एकाकी साहित्य-रूप बीमवी यताव्दी की देन है, जिसका प्रारम्भ पाश्चात्य देशों से हुआ। यद्यपि संस्कृत नाट्य-साहित्य, मिद्धान्त और रचना दोनों दृष्टियों में, बड़ा समृद्ध एवं गौरवशाली है; तथापि यह स्वीकार करने में कोई हीनता नहीं कि उसमें आधुनिक एकाकी जैसे कृतियों का नितान्त अभाव ही नहीं, प्रत्युत उसकी विधा का भी कोई शास्त्रीय विवेचन दृष्टिगोचर नहीं होता।

रूपक तथा उपरूपकों के भेदों में कुछ प्रकार मात्र-एक अंक के हैं; यथा रूपकों में भाण, वीथी, व्यायोग, अंक और प्रहसन, तथा उपरूपकों में गोष्ठी, नाट्य-रामक, काव्य, प्रेखण, रासक, श्रीगदित, विलासिका (विनायिका), हल्लीश और भाणिका। पर, आधुनिक एकाकी की कला केवल एक अंक वाले रूपको-उपरूपको के समान नहीं है। दूसरे, संस्कृत के इन रूपको-उपरूपको की कोई अविच्छिन्न परम्परा भी उपलब्ध नहीं होती। हिन्दी में तो उनका सर्वथा लोप ही है।

आधुनिक युग में भारतेन्दु-युग के नाटककारों ने अवश्य इन रूपकों-उपरूपको की कुछ विधाओं पर नाट्य-रचनाएँ प्रस्तुत की। इसी कारण भारतेन्दु-युग में हिन्दी-एकाकी का प्रारम्भ स्वीकार नहीं किया जा सकता, भले ही उनकी नाट्य-रचनाओं की विषय-वस्तु तत्कालीन सामाजिक व राजनीतिक जीवन से सम्बद्ध हो। आधुनिक जीवन को, संस्कृत के जिन रूपकों तथा उपरूपकों के आकार में भारतेन्दु युगीन नाटककारों ने प्रस्तुत किया है; वे आधुनिक एकाकी नामक साहित्य-रूप की कोटि में नहीं रखे जा सकते।

अंग्रेजी नाट्य-साहित्य से भारतीय लेखकों का उत्तरोत्तर सम्पर्क बढ़ने के फलस्वरूप ही भारतीय साहित्य में एकांकी का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी में एकांकी-रचना का श्रीगणेश, अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में (विशेष रूप से बंगाली भाषा) कुछ बाद से होता है। यदि बीज या प्रारम्भिक स्वरूप का तर्क दिया जाए तो एकांकी की परम्परा ऋग्वेद से जोड़ने वाले उत्साही साहित्य-शास्त्रियों की हिन्दी में अथवा अन्य भारतीय भाषाओं में कमी नहीं है।

वस्तुतः हिन्दी में आधुनिक एकांकी का प्रारम्भिक रूप यदि कहीं देखा जा सकता है तो वह श्री जयशंकर प्रसाद की 'एक घूंट' नामक नाट्य-रचना में; न कि भारतेन्दु तथा द्विवेदी युगीन अनेक नाट्य-प्रयासों में; जो संस्कृत रूपकों-उपरूपकों की शैली पर लिखे गये हैं। 'एक घूंट' हिन्दी-साहित्य के इतिहास में युगान्तरकारी रचना है। यह वह स्थल है जहाँ प्राचीन संस्कृत नाट्य-प्रणाली के प्रभाव की क्षीणता तथा पाश्चात्य नाट्य-शिल्प के प्रति तीव्र आकर्षण स्पष्ट दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से हिन्दी-साहित्य में आधुनिक-युग का श्रीगणेश अवश्य होता है; पर एकांकी के क्षेत्र में आधुनिक-युग का सूत्रपात 'एक घूंट' से ही माना जाना युक्ति-युक्त है।

'एक घूंट' का प्रकाशन सन् १९२६ में हुआ। कुछ समीक्षक 'एक घूंट' से हिन्दी-एकांकी के विकास की दूसरी अवस्था का प्रारम्भ मानते हैं। ये दो चरण 'पूर्व-प्रसाद-युग' तथा 'प्रसाद युग' के नाम से अभिहित किये गये हैं। इसमें संदेह नहीं, 'एक घूंट' में समय और स्थान संकलन का निर्वाह, पात्रों की मनोवैज्ञानिकता, संघर्ष की तीव्रता, वातावरण की सृष्टि, संवादों की स्वाभाविकता आदि अनेक ऐसे तत्त्व द्रष्टव्य हैं; जो उसको पूर्व के सभी रूपकों-उपरूपकों से पृथक् कर स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करते हैं। यह सब होते हुए भी 'एक घूंट' का आकार विशुद्ध

आधुनिक एकांकी जैसा नहीं है। इसी कारण 'एक घूंट' को हिन्दी-एकांकी का प्रारम्भिक रूप ही कहना उचित है।

'एक घूंट' के बाद हिन्दी में एकांकी-नाटकों की परम्परा बड़ी द्रुत गति से विकसित हुई। अनेक प्रतिभाशाली नाटककारों ने इस क्षेत्र में बड़ी उत्कृष्ट कला-सम्पन्न कृतियों का निर्माण किया। आधुनिक ढंग के हिन्दी एकांकी-नाटकों के जन्मदाताओं में श्री भुवनेश्वर प्रसाद और डा. रामकुमार वर्मा के नाम लिए जाते हैं। श्री भुवनेश्वर प्रसाद का सुप्रसिद्ध एकांकी-संग्रह 'कारवाँ' सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था। डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी नाटकों का पहला-संग्रह 'पृथ्वीराज की आँखें' सन् १९३६ में निकला। पर, डा. रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' शीर्षक एकांकी सन् १९३० की रचना है। 'बादल की मृत्यु' हिन्दी का पहला एकांकी माना जाता है और इस प्रकार डा. रामकुमार वर्मा को आधुनिक हिन्दी एकांकी के जन्मदाता होने का गौरव दिया जाता है। 'बादल की मृत्यु' कल्पना के आधार पर, पाश्चात्य शैली में लिखा गया काव्यात्मक एकांकी है। श्री भुवनेश्वर प्रसाद की एकांकी-कला पर बर्नार्ड शॉ का भी स्पष्ट प्रभाव है। इसके अनिश्चित 'कारवाँ' के बाद उनके अन्य एकांकी-नाटकों के संग्रह प्रकाश में ही नहीं आये ! यह हिन्दी का दुर्भाग्य है कि उसका एक इतना महत्त्वपूर्ण लेखक सर्वथा उपेक्षित रहा तथा आज भी जिसके मध्य में अधिकृत रूप से विदित नहीं कि वह जीवित है अथवा मृत ! श्री भुवनेश्वर प्रसाद को निकट से जानने वाले उनकी भयावह आर्थिक विपन्नता से परिचित रहे हैं। जो हो, कहने का अभिप्राय यह है कि श्री भुवनेश्वर प्रसाद का एकांकी-क्षेत्र में योगदान विशिष्ट व महत्त्वपूर्ण होते हुए भी परिमाण में अत्यल्प है। उसमें वैविध्य का भी अभाव है। अतः डा. रामकुमार वर्मा उनकी अपेक्षा अधिक समर्थ और सफल एकांकीकार ठहरते हैं। रचना-काल की दृष्टि से भी उनका एकांकी लेखन-प्रकाशन सन् १९३० से प्रारम्भ होता है तथा एकांकी-क्षेत्र

में उनका योगदान भी परिमाण में पर्याप्त, विषय से वैविध्यपूर्ण तथा उत्कृष्टता एवं मौलिकता की दृष्टि से मूल्यवान है। इन कारणों को देखते हुए, डा. रामकुमार वर्मा ही आधुनिक हिन्दी-एकांकी के जनक माने जाने चाहिए।

वैसे तो हिन्दी-एकांकी लेखकों की एक बहुत लम्बी सूची है, पर प्रमुख एकांकीकारों में निम्नलिखित लेखक ही उल्लेखनीय हैं: डा. राम-कुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, जगदीशचन्द्र माथुर, उदयशंकर भट्ट, भगवतीचरण वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, मेठ गोविन्ददास, उपेन्द्रनाथ 'अशक', वृन्दावनलाल वर्मा,^१ विष्णु प्रभाकर, डा. महेन्द्र भटनागर^२, डा. लक्ष्मीनारायण लाल^३, मत्स्येन्द्र 'शत्रु'^४, चिरंजीव^५, विनोद रस्तोगी^६, विश्वम्भर 'मानव'^७, कणादकृषि भटनागर^८, हरिकृष्ण 'प्रेमी'^९, गिरिजाकुमार माथुर^{१०}, भगवतशरण उपाध्याय^{११}, भारत भूषण अग्रवाल^{१२}, सिद्धनाथकुमार^{१३}, विमला लूथरा^{१४}, जयनाथ 'नलिन'^{१५}, मार्कण्डेय^{१६}, आदि। अन्य उल्लेखनीय एकांकी-लेखकों में गणेशप्रसाद द्विवेदी^{१७}, सूर्यकरण पागीख, चंद्रगुप्त विद्यालंकार, गोविन्दवल्लभ पत, सद्गुरुशरण अवस्थी^{१८}, एस० पी० खत्री^{१९}, शंभुदयाल सक्सेना, डा. प्रभाकर माचवे, आदि के नाम प्रस्तुत किये जा सकते हैं। शैली और कला की शिथिलता के कारण उपर्युक्त एकांकी-लेखक हिन्दी-एकांकी

१. कनेर २. अजय-आलोक ३. नाटक बहुरंगी ४. तार के खम्भे ५. रंगारंग ६. काले कौए गोरे हंस ७. लहर और चट्टान ८. सफर के साथी, आज का ताजा अखबार ९. मंदिर, 'वादलों के पार १०. जनम कैद ११. कुछ फ्रीचर, कुछ एकांकी १२. और ख़ाई बढ़ती गई १३. सृष्टि की साँझ १४. पचपन का फेर १५. नवाबी सनक, हाथी के दाँत १६. पत्थर और परछाईयाँ १७. सोहाग बिन्दी तथा अन्य नाटक (सन् १९३५) १८. दो एकांकी नाटक १९. सात एकांकी (सन् १९४९)

साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान नहीं बना सके। पंजाबी और अंग्रेजी में क्रमशः कर्तारसिंह दुग्गल (' कहानी कैसे बनी') और डी० एम० बोरगाँवकर ('पन्द्रह अगस्त') हिन्दी में आये। इनके अतिरिक्त दर्जनों और भी ऐसे लेखक हैं, जिन्होंने हाथ आजमाने के लिए इक्के-दुक्के एकांकी लिखे; जिनमें कुछ सफल है तो कुछ अति साधारण। वस्तुतः इन साहित्यकारों की प्रतिभा साहित्य के अन्य रूपों में ही निखरी है। इस कोटि में उन सभी विख्यात तथा नये हस्ताक्षरों को सम्मिलित किया जा सकता है जो यदाकदा रंगमंचीय एकांकी व रेडियो-रूपक फीचर, मंगीत-रूपक आदि लिखते रहे हैं।

डा. रामकुमार वर्मा—

डा. रामकुमार वर्मा वर्तमान युग के अत्यधिक लोकप्रिय एवं मिद्ध-हस्य एकांकीकार हैं। हिन्दी-साहित्य में एकांकीकार के रूप में उनका स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। 'बादल की भन्य' जीर्णक एकांकी (मन् १९३०) के बाद से निरन्तर वे विभिन्न प्रकार के एकांकी-नाटकों का सज्जन कर रहे हैं। उनके अनेक एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं, जिनमें से अधिकांश अपोलिखित हैं: 'पृथ्वीराज की गॉखे' (मन् १९३८), 'रेजमी टाई' (मन् १९४१), 'चारुमित्रा' (मन् १९४०), 'विभूति' (मन् १९४७), 'मपन-किरग' (मन् १९४७), 'चौमुदी-महोत्सव' (मन् १९४८), 'रम्य राम' (मन् १९५०), 'कपूरगज' (मन् १९५१), 'ध्रुवतारिका' (मन् १९५१), 'रजत-रश्मि' (मन् १९५२), 'दीपदान', 'कामकदला' आदि।

भावुकता और बौद्धिकता का अद्भुत संयोग वर्माजी के नाटकों में मिलता है। वे स्वभाव से मरस और कल्पनाशील हैं; उन्होंने नैसर्गिक रूप से कवि-हृदय पाया है। गहन और विस्तृत अध्ययन के परिणाम-स्वरूप उनका विचारक और आलोचक भी बड़ा सजग, सतर्क और सशक्त

है। उनके एकांकियों में जहाँ भावोल्लास और कल्पना का वैभव मिलता है वहाँ जीवन के प्रति आलोचक-बुद्धि भी पाई जाती है।

डा. रामकुमार वर्मा के एकांकी-नाटकों की कला यद्यपि पाश्चात्य है तथापि उनका अन्तरंग, उनकी आत्मा नितांत भारतीय है। उन्होंने अपने नाटकों में जिन आदर्शों की स्थापना की है उन पर भारतीय-संस्कृति का पूर्ण प्रभाव है।

डा. रामकुमार वर्मा ने सामाजिक, ऐतिहासिक और पौराणिक नाटक लिखे हैं, उनके सामाजिक नाटकों में मध्य-वर्गीय भद्र समाज के चित्र अधिक हैं। पौराणिक नाटकों में, प्राचीन कथानक को आधार मानकर उन्होंने वर्तमान समाज और व्यक्ति-मन की समस्याओं को सुलभाने का प्रयत्न किया है। ऐतिहासिक नाटक उन्होंने कई दृष्टियों से लिखे हैं। मात्र राष्ट्रीय-गौरव की भावनाओं को जाग्रत करने के लिये नहीं; प्रत्युत ऐतिहासिक पात्रों के साथ उचित न्याय करने के निमित्त भी उन्होंने ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं। वैसे, दोनों स्थितियों में व्यक्ति की चारित्रिक महत्ता को प्राथमिकता मिली है। स्व० जयशंकर 'प्रसाद' की तरह डा. रामकुमार वर्मा के ऐतिहासिक एकांकी नाटकों में भी अनुसंधान-वृत्ति पाई जाती है। पर 'प्रसाद' जी और वर्माजी के ऐतिहासिक दृष्टिकोण में किंचित अन्तर है। 'विजय-पर्व' की भूमिका में डा. रामकुमार वर्मा 'प्रसाद' जी के इतिहास-प्रेम का विवेचन करते हुए लिखते हैं, "प्रसादजी ने ऐतिहासिक तथ्यों ने परिवर्तन भी किया है; किन्तु या तो वह नवीन अनुसंधानों (जो प्रामाणिक सिद्ध न हो सके) के आधार पर हैं, या कथा-वस्तु में चमत्कार लाने के लिए। 'प्रसाद' जी ने ऐतिहासिक घटनाओं को प्रधानता दी है; उनके साथ ही वे पात्रों का अन्तर्द्वन्द्व चित्रित करना चाहते हैं। इसी कारण उनके नाटकों में रंगमंच के उपयुक्त वातावरण का अभाव है उनके नाटकों में कल्पित पात्रों की संख्या अधिक है; जिससे कहीं-कहीं अस्वाभाविकता भी आ जाती है।

समय का ध्यान उन्होंने नहीं रखा है; क्योंकि वे सम्पूर्ण जीवन को चित्रित करना चाहते थे। इतिहास के मोह ने नाटकों को रंगमंच के अनुपयुक्त बना दिया है।" डा. रामकुमार वर्मा ने अपने ऐतिहासिक नाटकों पर अनुसंधान-वृत्ति को इतना नहीं छाने दिया है कि वह उनकी नाटकीयता को ही दबाकर रख दे। नाटककार और इतिहासकार का एक संतुलित रूप उनमें मिलता है।

डा. रामकुमार वर्मा के नाटकों की सबसे बड़ी सफलता उनके अभिनेयत्व में है। उनके प्रायः सभी नाटक रंगमंच के अनुकूल हैं। अव्यवसायी रंगमंच के लिए उन्होंने अपने अधिकांश नाटक लिखे भी; जो महाविद्यालयों के रंगमंचों पर अभिनीत हुए और होते हैं। इसी से सम्बद्ध उनके नाटकों की एक विशेषता यह भी है कि उनके नाटक रेडियो और रंगमंच पर समान सफलता के साथ खेले जा सकते हैं।

डा. रामकुमार वर्मा के नाटकों की अन्य प्रमुख विशेषता भाषा सम्बन्धी है। वर्माजी के नाटक भाषा-सौंदर्य के बड़े धनी हैं। उनमें प्रयुक्त भाषा का स्वाभाविक साहित्यिक स्वरूप बड़ा ही आकर्षक होता है। इसके अतिरिक्त एक भी शब्द का प्रयोग निरर्थक नहीं मिलेगा।

व्यंग्य और हास्य-विनोद के एकांकी-नाटक भी वर्माजी ने लिखे हैं। उनका व्यंग्य प्रभावशाली होता है। हास्य-विनोद की उक्तियाँ शिष्ट, संयत और आधुनिक होती हैं।

भुवनेश्वर प्रसाद —

श्री० भुवनेश्वर प्रसाद बड़े प्रतिभाशाली समर्थ एकांकीकार हैं। यद्यपि उनके समय तक हिन्दी-एकांकी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही था; तथापि उन्होंने ऐसे एकांकी-नाटकों का सर्जन किया, जो आज हिन्दी-एकांकी के समुचित विकास के बाद भी अप्रतिम हैं; विशिष्ट हैं। हिन्दी-एकांकीकारों में भुवनेश्वर प्रसाद जी का व्यक्तित्व सबसे निराला

है। उनके एकांकी-नाटकों में विषय और शिल्प का अत्याधुनिक रूप देखकर उनकी महान् प्रतिभा का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। डा० नगेन्द्र का यह मत ध्यान देने योग्य है—‘इस दृष्टि से यह एकांकीकार समय से कितना आगे है।’

श्री० भुवनेश्वर जी के छह एकांकियों का एक संकलन ‘कारवाँ’ सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ था (३० मार्च १९३५)। इसमें निम्न-लिखित एकांकी संग्रहीत हैं—श्याम : एक वैवाहिक विडम्बना, एक साम्यहीन साम्यवादी, शैतान, प्रतिभा का विवाह, रोमांस : रोमांच, और लाटरी। भुवनेश्वर जी के दो अन्य एकांकी अत्यधिक लोकप्रिय हुए हैं; जो सम्भवतः पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं हो सके। ये एकांकी हैं—‘ऊमर’ और ‘स्ट्राइक’।

भुवनेश्वर जी के एकांकी-नाटकों के संबंध में अधिकांश समीक्षकों का यही मत है कि उन पर बर्नार्ड शॉ की विचारधारा का अत्यधिक प्रभाव है। श्री० शिवदानसिंह चौहान को उनमें अनुकरण-प्रवृत्ति ही दृष्टिगोचर होती है !—“भुवनेश्वर बर्नार्ड शॉ की अन्तर्भेदी दृष्टि का अपने अन्दर विकास करके भारतीय जीवन और भारतीय मानस को अपने अनुभव से ढालकर मौलिक नहीं बना पाए, जिससे उनके नाटकों में मौलिकता की अपेक्षा अनुकरण की प्रवृत्ति अधिक दिखाई देती है।” स्वयं भुवनेश्वर जी ने अपने एकांकी-संकलन ‘कारवाँ’ के ‘प्रवेश’ में बर्नार्ड शॉ के प्रभाव को स्वीकार किया है। उन्हीं के शब्दों में, “लिखने के बाद मुझे ज्ञात हुआ कि मेरे ‘शैतान’ के एक सीन में शॉ की छाया तनिक मुखर हो गई है। मैं इसे निर्विवाद स्वीकार करता हूँ।” निश्चय ही, भुवनेश्वर जी की विचारधारा और अभिव्यक्ति प्रणाली पर बर्नार्ड शॉ का प्रभाव है; पर उसे अनुकरण की कोटि में रखना युक्तियुक्त नहीं।

श्री० भुवनेश्वर प्रसाद जी की मान्यताएँ व स्थापनाएँ चौका देने

वाली हैं। इसी कारण उनके संबंध में कहा गया है कि वे नास्तिकता की शक्ति लेकर हिन्दी-साहित्य में आये। वे संदेहवादी हैं। उन्हें जीवन की किसी भी वस्तु में आस्था नहीं, आदि। 'कारवाँ' के 'प्रवेश' से उनके विचारों के कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :

“ ‘आत्म-ज्ञान’ मानव-जीवन की सबसे बड़ी समस्या है और यह तभी संभव है जब वह संसार से ऊपर उठ जाय, क्योंकि मानव-जीवन के चारों ओर सभी वस्तुएँ एक समस्या हैं और सीमाएँ ।”

“प्रतिहिंसा और प्रेम में स्त्री पुरुष से अधिक ‘आदिम’ है—यही सारी समस्या का मूल है ।”

“हिन्दू विवाह वेश्यागमन का पतित रूप है—ऐसा मैंने एक स्त्री को कहते सुना ।”

“जिस भाँति जीवन असार और निष्फल है उसी प्रकार कला भी। जीवन एक लज्जिली मुसकान है। कला एक शुष्क और कठोर हास्य ।”

“कला में अश्लीलता के अर्थ है नग्न पवित्रता ।”

भुवनेश्वर जी ने सामाजिक जीवन की जर्जर तथा थोथी नैतिक मान्यताओं पर बड़े निर्मम प्रहार किये हैं। उनका व्यंग्य बड़ा तीखा होता है। वे आडम्बर के कट्टर शत्रु हैं। वास्तविकता को निरावरण कर उसे उन्होंने निःसंकोच समाज के सम्मुख रखा है। भुवनेश्वर जी का जीवन-दर्शन व दृष्टिकोण नकारात्मक है, पर उनकी शक्ति को सब स्वीकार करते हैं। डा० नगेन्द्र ने उनकी विचारधारा एवं एकांकियों के प्रतिपाद्य के संबंध में जैसा लिखा है, “लेकिन इस पतले-दुबले अपने में ही संकुचित आदमी में गजब की शक्ति है। उसके नकार में अपूर्व दृढ़ता है। इसलिए उसके नाटकों की समस्या सभी जगह तीखी है। ‘मनुष्य अपनी बुद्धि की स्थूलता से वस्तुओं का वास्तविक रूप छिपाए हुए है।

मानव की यही एक समस्या है।' और आप सच मानें लेखक ने इस स्थूलता को जैसे नाखूनों से चीरकर, जीवन की भीतरी चोट पर उँगली रख दी है। भुवनेश्वर की समस्या काम तक ही सीमित है लेकिन काम के साथ अर्थ भी लगा हुआ है।"

श्री० भुवनेश्वर प्रसाद जी सही अर्थों में साहित्य-सृष्टा की गरिमा से युक्त हैं। उनका अपना व्यक्तित्व है—सशक्त और निर्बन्ध। उनके एकांकियों में पाया जाने वाला मनोविज्ञान और व्यंग्य हिन्दी-एकांकी साहित्य में उनके महत्त्व और वैशिष्ट्य को प्रकट करता है।

जगदीशचंद्र माथुर—

श्री० जगदीशचंद्र माथुर जी के एकांकी एकांकी-नाट्य-कला की दृष्टि से बड़े सशक्त व सफल हैं। उनके प्रथम एकांकी 'भोर का तारा' का रचना-काल सन् १९३७ है। इसी नाम से उनके पाँच एकांकी-नाटकों का संकलन सन् १९४७ में प्रकाशित हुआ। ये एकांकी हैं : मकड़ी का जाला, कर्लिंग विजय, खँडहर, रीढ़ की हड्डी, और भोर का तारा। 'कर्लिंग विजय', 'रीढ़ की हड्डी' और 'भोर का तारा' माथुर जी के बड़े लोकप्रिय एकांकी हैं। सन् १९५३ में उनका दूसरा एकांकी-संग्रह निकला—'ओ मेरे सपने'। इसमें उनके पाँच नटखट-एकांकी संकलित हैं—घोंसले, खिड़की की राह, कबूतर खाना, भाषण, और 'ओ मेरे सपने'। 'ओ मेरे सपने' के ये सभी एकांकी हास्य और व्यंग्य की रचनाएँ हैं, जिन्हें लेखक ने स्वयं 'नटखट' विशेषण दिया है। प्रथम संग्रह के एकांकी 'रीढ़ की हड्डी' के समान ही इन एकांकियों में भी लेखक ने वर्तमान समाज की असंगतियों पर बड़े सरस ढंग से प्रकाश डाला है। शिष्ट और सारगर्भित हास्य उनकी रचनाओं में द्रष्टव्य है। भाषा का स्वाभाविक प्रवाह भी सर्वत्र मिलेगा। श्री० जगदीशचंद्र माथुर जी के एकांकी रंगमंच के सर्वथा योग्य हैं। हिन्दी-एकांकी के विकास में उनका योगदान विशिष्ट और महत्त्वपूर्ण है।

उदयशंकर भट्ट —

श्री० उदयशंकर भट्ट मुख्य रूप से कवि हैं, पर वे नाटककार के रूप में अधिक सफल हुए हैं। परिमाण और स्थायी महत्त्व, दोनों दृष्टियों से नाटक और एकांकी-नाटक के क्षेत्र में उनका योगदान महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय है। हिन्दी-एकांकी के विकास में उनका स्थान ऐतिहासिक ही नहीं; उसे उत्कृष्टता, समृद्धि एवं विविधता प्रदान करने वालों में है। एकांकीकार के रूप में उदयशंकर भट्ट आज भी आधुनिक है।

भट्ट जी के निम्नलिखित एकांकी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं—अभिनव एकांकी नाटक स्त्री का हृदय, समस्याका अंत, कालिदास, आदिम युग और अन्य नाटक, (तीन नाटक), विश्वामित्र और दो भाव-नाट्य, अंधकार और प्रकाश, धूम शिखा, पर्दे के पीछे। डा० कैलाशचंद्र भाटिया ने भट्ट जी के सन् १९२२-२३ में लिखित तथा अभिनीत दो एकांकियों का उल्लेख किया है—असहयोग और स्वराज्य' एवं 'चित्तरंजन दास'। इन एकांकियों को उन्होंने भट्ट जी के एकांकीकार के विकास में भूमिका-रूप में ही ग्रहण किया है। इन एकांकियों का रचना-काल डा० रामकुमार वर्मा के एकांकी 'बादल की मृत्यु' (सन् १९३०) से पूर्व का है। पर, भट्ट जी का प्रथम प्रकाशित एकांकी 'दुर्गा' है ('सरस्वती' सन् १९३४)। सन् १९३६ में उनका दूसरा एकांकी 'एक ही कब्र में' प्रकाशित हुआ ('हंस'—दिसम्बर सन् १९३६) तथा सन् १९३८ में 'दस हजार' छपा; जिसने उन्हें एकांकी-क्षेत्र में विख्यात कर दिया। भट्ट जी के एकांकी साहित्य में हास्य-व्यंग्य, भाव-नाट्य, नाट्य-रूपक, प्रतीक रूपक, ध्वनि-रूपक आदि अनेक शिल्प-रूप मिलते हैं। विषय की दृष्टि से उन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक आदि प्रायः सभी प्रकार के एकांकियों का सृजन किया है।

एकांकी नाट्य-कला का निखरा-रूप उनकी रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है। घटना की तीव्रता, पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण, पात्रानुकूल

भाषा आदि की दृष्टि से भट्ट जी के एकांकी पूर्ण सफल हैं। उन्होंने अभी तक लगभग साठ एकांकी लिखे हैं।

उपेन्द्रनाथ 'अश्क' —

श्री० उपेन्द्रनाथ 'अश्क' को 'लक्ष्मी का स्वागत', 'पापी' आदि जैसे कुछ एकांकियों के कारण बहुत शीघ्र लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसमें संदेह नहीं, 'अश्क' जी उत्कृष्ट कोटि के कलाकार हैं। उनके अनेक एकांकी कला-सौष्ठव और भाव-वैभव से परिपूर्ण हैं।

उनका प्रथम एकांकी संग्रह 'देवताओं की छाया में' ^१ सन् १९३८ में प्रकाशित हुआ। तदुपरान्त 'चरवाहे' ^२, 'पक्का गाना' ^३, 'पर्दा उठाओ, पर्दा गिराओ' ^४, 'साहब को जुकाम है' ^५, आदि अनेक संग्रह निकले। 'अश्क' जी ने पूर्ण नाटक भी लिखे हैं, पर उनमें उनका एकांकीकार ही अधिक अभिव्यक्त हुआ है। 'साहब को जुकाम है' नामक संग्रह में शिल्प संबंधी नए प्रयोग मिलते हैं।

'अश्क' जी की मान्यता है कि वे जीवन के निर्माता नहीं, आलोचक हैं। उन्होंने सामाजिक जीवन की अनेक असंगतियों, विकृतियों, व विषमताओं को अपने एकांकियों में प्रस्तुत किया है। प्रहसन लिखने में भी वे सिद्धहस्त हैं। उनका हास्य बड़ा रोचक, तथा व्यंग्य तीखा होता है। कवि होने के कारण 'अश्क' के एकांकी भावावेश से परिपूर्ण हैं। वे दर्शकों को प्रभावित करते हैं। मंच-प्रभाव की दृष्टि से उनकी अधिकांश रचनाएँ सफल हैं।

१. लक्ष्मी का स्वागत, अधिकार का रक्षक, देवताओं की छाया में, ..
२. चरवाहे, मैमूना, चुम्बक, चिलमन, चमत्कार, खिड़की, सूखी डाली।
३. पक्का गाना, तूफान से पहले, बहनें, नया पुराना, वेश्या, कामदा।
४. कहसा साब कइसी आया, बतसिया, सयाना मालिक, तौलिये, कस्बे के क्रिकेट-क्लब का उद्घाटन, मस्केबाजों का स्वर्ग।
५. किसकी बात ?, फ़ादर, घपले, साहब को जुकाम है, कुसुम का सपना।

सेठ गोविन्ददास —

सेठ गोविन्ददास नाटककार के रूप में विख्यात हैं। परिमाण की दृष्टि से सेठ गोविन्ददास जी ने हिन्दी में सर्वाधिक नाटक लिखे हैं। एकांकी के क्षेत्र में भी उनका योगदान कोई कम नहीं है। वे अभी तक लगभग साठ एकांकी लिख चुके हैं। कुछ प्रकाशित संग्रहों के नाम हैं— पंचभूत, एकादशी, स्पर्द्धा, सप्त-रश्मि (१९४१), अष्टदल (१९४४) आदि। 'चतुष्पथ' उनके एकपात्री नाटको का संकलन है। 'गोविन्ददास ग्रन्थावली' के कई भागों में, उनकी सभी नाट्य-कृतियाँ संग्रहीत की गई हैं।

सेठ गोविन्ददास जी ने प्रायः सभी प्रकार के एकांकी लिखे हैं— सामाजिक, समस्या प्रधान, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक, मनो-वैज्ञानिक आदि। हास्य व व्यंग्य से परिपूर्ण कुछ प्रहसन भी उनके लिखे मिलते हैं। पर, सेठ गोविन्ददाम जी का एकांकी-क्षेत्र में महत्त्व उनके द्वारा लिखे गये एकपात्री नाटकों के कारण है। ऐसे कुछ प्रसिद्ध नाटक हैं— षट् दर्शन, प्रलय और सृष्टि, अलबेला, सच्चा जीवन, तथा शाप और वर। ये रूपक मोनोड्रामा की आधुनिक रचना-शैली पर लिखे गये हैं; संस्कृत के आकाश-भाषित के अनुकरण पर नहीं। वे मात्र 'स्वगत' नहीं। उनमें सम्बोधन-शैली का आश्रय लिया गया है। पात्र किमी-न-किमी को सम्बोधित करके ही अपने भाव व विचार व्यक्त करता है। धाराप्रवाह भावावेश की अभिव्यक्ति सेठ जी के मोनोड्रामाओं की प्रमुख विशेषता है। भाषा की सहजता भी उनमें दृष्टव्य है।

लक्ष्मीनारायण मिश्र—

श्री० लक्ष्मीनारायण मिश्र श्रेष्ठ नाटककारों में से हैं। हिन्दी में समस्यामूलक नाटकों का समावेश मिश्र जी के द्वारा ही हुआ। उन्होने

एकांकी भी लिखे हैं। उनके प्रकाशित एकांकी-संग्रह हैं—‘अशोक वन’^१ (सन् १९५०), ‘प्रलय के पंख पर’^२ (सन् १९५१), ‘कावेरी में कमल’^३, ‘भगवान मनु तथा अन्य एकांकी’^४ (सन् १९५७)। मिश्र जी का दृष्टिकोण सांस्कृतिक, पर पुनरुत्थानवादी है। वैदिक धर्म में उनकी आस्था है। बौद्धों के प्रति वे उदार नहीं हैं। उनकी रचनाओं में प्रति-क्रियावादी तत्त्व एवं साम्प्रदायिकता मिलती है। वर्तमान युग में ऐसी विचारधारा समर्थन नहीं पा सकती। इसमें संदेह नहीं लक्ष्मीनारायण मिश्र जी की एकांकी-कला आकर्षक तथा प्रौढ़ है।

भगवतीचरण वर्मा—

श्री० भगवतीचरण वर्मा ने अपने हास्य-व्यंग्य के लोकप्रिय एकांकी ‘सबसे बड़ा आदमी’ के कारण हिन्दी एकांकी-साहित्य में स्थान बना लिया है। एक ही रचना में हास्य और व्यंग्य दोनों का सफल निर्वाह ‘सबसे बड़ा आदमी’ की विशेषता है। भगवतीचरण वर्मा के ऐसे एकांकी मात्र हास्य-भलकियाँ नहीं; उनसे वर्तमान समाज-व्यवस्था तथा आर्थिक-प्रणाली पर भी समुचित प्रकाश पड़ता है। उनका एक एकांकी-संग्रह ‘बुभुता दीपक’ प्रकाशित हुआ है; जिसमें चार एकांकी संकलित हैं—दो कलाकार (१९४०), सबसे बड़ा आदमी (१९३६), चोपाल में (१९४८) और बुभुता दीपक (१९४९)। इनके अतिरिक्त भगवतीचरण वर्मा जी ने और भी कई एकांकी लिखे हैं। स्वाभाविकता उनके एकांकियों की प्रमुख विशेषता है। पात्रों की नाटकीय भंगिमाएँ भी उनकी रचनाओं में बड़ी सहज और आकर्षक हैं।

१. अशोक वन, कौशम्बी, विदिशा, भविष्य का गर्व, दशाश्वमेध।
२. प्रलय के पंख पर, बालू से तेल, धरती के नीचे, मेंड तोड़ दो, गंगा की लहरें, चकाचौंध।
३. कावेरी में कमल, देवगिरि में ग्रहण, पत्थर में प्राण।
४. भगवान मनु, विधायक पराशर, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य, आचार्य शंकर

विष्णु प्रभाकर—

ध्वनि-रूपक लिखने में विष्णु प्रभाकर सिद्धहस्त हैं। उन्होंने हिन्दी-एकांकी के क्षेत्र में अनेक प्रयोग किये हैं। विष्णु प्रभाकरजी के प्रकाशित एकांकी-संग्रह हैं—‘इंसान’, ‘क्या वह दोषी था’, ‘प्रकाश और परछाई’ (सन् १९५६), ‘बारह एकांकी’, ‘दस बजे रात’ आदि। विष्णु प्रभाकर जी के सामाजिक एकांकी बड़े प्रभावशाली हैं। पात्रों के आन्तरिक द्वन्द्व को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत कर वे मानव-अदृशों की प्रतिष्ठा करते हैं। उनके एकांकियों में मानवता की अभिव्यक्ति बड़े कलात्मक रूप में हुई है। ‘उपचेतना का छल’, ‘रक्तचदन’, ‘सीमारेखा’ आदि उनके प्रसिद्ध एकांकी हैं, जो उनकी नाट्य-कला का भली-भाँति परिचय देते हैं।

इसमें संदेह नहीं, हिन्दी-एकांकी का विकास द्रुत गति से हो रहा है। वह विषय-वैविध्य की दृष्टि से सम्पन्न और शिल्प-रूपों से समृद्ध होता जा रहा है। ‘आकाशवाणी’ से उसे पर्याप्त प्रोत्साहन मिला है। अधिकांश ध्वनि-रूपक रंगमंच पर सुगमता से अभिनीत होने योग्य हैं—यदि रचना में तंत्र संबंधी सूक्ष्म तथा विशिष्ट निर्देश नहीं है तो। रंगमंचीय एकांकी और ध्वनि-रूपक के शिल्प में तो अंतर, निश्चय ही, बना रहेगा, क्योंकि उनको प्रस्तुत करने के ढंग भिन्न हैं। विषय की दृष्टि से सामाजिक^१, राजनीतिक^२, सांस्कृतिक^३, पौराणिक^४, ऐतिहासिक^५, दार्शनिक^६, राष्ट्रीय^७, मनोविश्लेषणमूलक^८, यथार्थिक^९, चारित्रिक द्वन्द्वप्रधान^{१०} आदि एकांकी लिखे जा रहे हैं।

१. दस मिनट (डा. रामकुमार वर्मा), रीढ़ की हड्डी (जगदीशचंद्र माथुर) २. हंगर स्ट्राइक (सेठ गोविन्ददास) ३. प्रतिशोध (डा. रामकुमार वर्मा) ४. मनु-मानव, आदिम युग (उदयशंकर भट्ट) ५. पृथ्वी-राज की आँखें (डा. रामकुमार वर्मा), गण-नायक विक्रम (डा. महेन्द्र भटनागर) ६. अंधकार (डा. रामकुमार वर्मा), टकराहट (जैनेन्द्र कुमार) ७. माँ-बाप (विष्णु प्रभाकर) ८. ऊसर (भुवनेश्वर प्रसाद). पापी (‘अशक’) ९. सुदामा के तन्दुल (सेठ गोविन्ददास) १०. चारुमित्रा, उत्सर्ग (डा. रामकुमार वर्मा), धोकेबाज (सेठ गोविन्ददास)

शिल्प-रूपों की दृष्टि से प्रहसन^१, हास्य और व्यंग्य मूलक^२, समस्या-एकांकी^३, कल्पना मूलक^४, सोद्देश्य एकांकी^५, शिल्पमूलक^६, लक्षण या सूचनामूलक^७, प्रतीक-रूपक^८, ध्वनिरूपक^९, रेडियो एकांकी^{१०}, एक पात्रीय एकांकी^{११}, जनपदीय एकांकी^{१२}, दुःखान्त^{१३}, संगीत-रूपक^{१४} आदि अनेक प्रकार उपलब्ध है। इसमें संदेह नहीं, आज हिन्दी-नाटककारों की, एकांकी-रचना में विशेष रुचि पाई जाती है; जो वर्तमान युग की आवश्यकताओं को देखते हुए उचित ही है।



१. एक तोले अफीम की कीमत (डा. रामकुमार वर्मा), दो-अतिथि, वर-निर्वाचन (उदयशंकर भट्ट) २. दो कलाकार, सबसे बड़ा आदमी (भगवतीचरण वर्मा) ३. रजनी की रात (डा. रामकुमार वर्मा), सन्देह का अन्त (भगवतीचरण वर्मा) ४. बादल की मृत्यु (डा. रामकुमार वर्मा) ५. जाति-उत्थान (सेठ गोविन्ददास) ६. ऊसर (भुवनेश्वर प्रसाद) ७. मर्मी कवि कबीर, देवी अहिल्याबाई (डा. महेन्द्र भटनागर) ८. जीवन (उदयशंकर भट्ट) ९. प्रतिशोध (डा. रामकुमार वर्मा) १०. रक्त-चंदन (विष्णु प्रभाकर) ११. प्रलय और सृष्टि (सेठ गोविन्ददास) १२. राहुल सांकृत्यायन के भोजपुरी में लिखित एकांकी १३. विवाह के दिन ('अश्क') १४. शुभ्र पुरुष (सुमित्रानंदन पंत), कुंवर कन्हैया (डा. महेन्द्र भटनागर) ।

प्रतिशोध

डा० रामकुमार वम

पात्र

- भारवि — संस्कृत के महाकवि
श्रीधर — संस्कृत के महापंडित, भारवि के पिता
सुशीला — भारवि की माता
भारती — एक विदुषी
आभा — सेविका

(श्रीधर ग्रंथ देखते हुये श्लोक पढ़ते हैं:—)

श्रीधर : ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध्वाः कस्यम्विद्धनम् ॥

अर्थात् जगत् में जो कुछ स्थावर और जंगम है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादित है ।—अर्थात् संसार के क्रोड़ में भगवान् की सत्ता ही है । तू नाम-रूपात्मक बाहरी विकारों के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है, उसका स्वाद तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा...(सुशीला की ओर) तुम ध्यान में नहीं मुन रही हो !

सुशीला : (ध्यानमग्नता से चौंककर) अहं, मुन तो रही हूँ, किन्तु भारवि...

श्रीधर : (बीव ही में) भारवि ! फिर भारवि ! भारवि के पीछे वेद छोड़ दो, उपनिषद् छोड़ दो । शास्त्र छोड़ दो । भारवि ही संसार में एक पुत्र है और तुम्हीं संसार में एक माता हो !

सुशीला : यह मैं नहीं कहती, किन्तु भारवि अभी तक नहीं आया !...

श्रीधर : नहीं आया, तो आ जाएगा ! इस धारा नगरी में उसके आकर्षण के बहुत से केन्द्र हैं । कहीं बैठ गया होगा । कोई कविता का भाव खोजने लगा होगा । महाकवि जो बनता है ! और तुम उसकी माता हो । तुम भी कविता का भाव खोजो

न ! तुम तो अधिक अच्छा भाव खाज सकोगी ? अच्छा, भाव देखो, ईशावस्योपनिषद् के पहिले ही श्लोक में 'त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा'...अर्थात् तू नाम-रूपात्मक बाहरी विकारों के परित्याग से वास्तविक सत्ता जो ईश्वर की है—

सुशीला : ईश्वर की सत्ता तो है, किन्तु भारवि नहीं आया ?

श्रीधर : नहीं आया तो जाएगा कहाँ !.....शिव ! शिव ! फिर भारवि । क्या कहूँ सुशीला, भारवि तो उपनिषद् से भी बढ़कर हो गया है कि उसके चितन में उपनिषद् का भी चितन समाप्त हो गया । कोई चिन्ता नहीं, मैं कहता हूँ, भारवि है कवि और कवि समय पर शासन करता है । समय उस पर शासन नहीं करता । दिवस और रात्रि के उज्ज्वल और श्याम रंगवाले समय के जो नेत्र हैं उनमें कवि दृष्टि बनकर विचरण करता है । वह घर और बाहर में अन्तर क्या समझता है ? वह समस्त है संसार को अपने में देवता है और अपने में समस्त संसार को, कवि संसार में गहकर भी संसार से परे हो जाता है ।

सुशीला : तो क्या भारवि कवि बनकर मेरा पुत्र नहीं रहा ?

श्रीधर : पुत्र तो है ही, किन्तु वह संसार का जनक भी है । जनक ! अपनी कल्पना से वह न जाने कितने संसार के समूहों का निर्माण कर सकता है !

सुशीला : तो क्या कल्पना से वह अपनी माता का भी निर्माण कर सकता है ? और वह करे भी तो कर ले, किन्तु संसार में उसकी एक ही माता रहेगी, एक ही जननी रहेगी और वह मैं हूँ, मैं ! भारवि की केवल एक माता है, और वह मैं हूँ !

श्रीधर : हाँ, माता तो तुम्हीं हो । किसी दिन शास्त्रार्थ करके देख लेना !

सुशीला : शास्त्रार्थ के नियमों में माता का हृदय नहीं बाँधा जा सकता ! शास्त्र में सिद्धांत है, प्रेरणा नहीं है। शास्त्र में माता की प्रशस्ति है, किन्तु माता के हृदय का स्पन्दन नहीं है। शास्त्र तो तत्त्व की बात कहता है, उसे आसुओं की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव नहीं है !

श्रीधर : माँ के आसुओं की तरलता और सुख की विह्वलता का अनुभव पुत्र करता है ?

सुशीला : अवश्य करता है। क्रिया की प्रतिक्रिया तो होती ही है।

श्रीधर : व्याकुल होगा तो देख लूँगा उसकी व्याकुलता। तुम इस व्याकुलता से ऊपर उठो। शास्त्र का चिंतन करो।

सुशीला : आप भारवि के पिता हैं तो शास्त्र का चिंतन कर सकते हैं, मैं कैसे करूँ ? आज दूसरा दिन है और वह नहीं आया। और दिनों तो वह जल्दी आ जाया करता था—आज दूसरी रात्रि का दूसरा प्रहर है और वह अभी तक नहीं आया न जाने वह कहाँ होगा; उसने भोजन भी किया होगा या नहीं ?

श्रीधर : सुशीला, तुम व्यर्थ ही चिन्ता करती हो। भारवि कोई शिशु तो है नहीं जिसे भोजन कराने के लिये माता के दुलार की आवश्यकता है। वह किसी गोष्ठी में बैठकर कविता का आनंद ले रहा होगा, यहाँ माता चिन्तित हो रही है।

सुशीला : आप इतने निष्ठुर कैसे हैं ? क्या शास्त्र का चिंतन और पांडित्य मनुष्य को निष्ठुर बना देता है ? भूख-प्यास में भी कहीं कवि-गोष्ठी से रुचि हो सकती है ? मेरा भारवि कहीं अन्यत्र भोजन नहीं करता।

श्रीधर : भारवि-भारवि-भारवि ! न तुम शांत रहोगी, न मुझे शांत होने दोगी। भारवि मूर्ख है और तुम.....

सुशीला : (बीच ही में) हाँ, मैं भी मूर्खा हूँ। यदि पुत्र के लिये माँ की ममता मूर्खता है तो ऐसी मूर्खता सदैव ही मुझ में बनी रहे। आप पंडित बनें, शास्त्री हों, विद्या के आचार्य हों। मेरे लाल को मूर्ख समझें और मुझे भी !

श्रीधर : सुशीला, अब तुम्हें मैं कैसे समझाऊँ ?

सुशीला : कहीं आप ही ने तो उसे घर आने में नहीं रोक दिया ?

श्रीधर : मैंने ?

सुशीला : हाँ, आपने !

श्रीधर : मैंने कभी रोका है ? कभी रोक सकता हूँ ?

सुशीला : पिता सब कुछ कर सकता है। वह उसे घर से निर्वासित कर सकता है, जाति से निर्वासित कर सकता है, समाज से निर्वासित कर सकता है !

श्रीधर : किन्तु हृदय से निर्वासित नहीं कर सकता !

सुशीला : हृदय से न सही; घर से तो निर्वासित कर ही सकता है !

श्रीधर : यदि वह अन्याय का आचरण करे, धर्म के प्रतिकूल चले, तो यह भी सम्भव है !

सुशीला : तो आपने ही उसे आने से रोक दिया ?

श्रीधर : मैंने रोका तो नहीं, किन्तु यदि वह मेरी बात का उल्टा अर्थ लगाये तो मैं क्या करूँ ?

सुशीला : तो आपने ही मेरे लाल से ऐसी बातें की हैं जो उसे कष्ट कर हुईं ?

श्रीधर : यदि कष्ट कर हों तो उसकी अपनी धारणा है !

सुशीला : तो आपने उसकी ताड़ना अवश्य की होगी ?

श्रीधर : यदि पिता चाहता है कि उसका पुत्र सुमार्ग पर चले तो कभी-कभी ताड़ना अनिवार्य हो जाती है।

सुशीला : तो आपने उसकी ताड़ना की है ?

श्रीधर : हाँ, मैंने की है !

सुशीला : इसीलिये वह नहीं आया ! क्या मैं कारण जान सकती हूँ ?

श्रीधर : अवश्य । इधर मैंने देखा कि वह शास्त्रार्थ में अनेक पंडितों को पराजित कर रहा है ।

सुशीला : तो यह तो आपकी प्रसन्नता का विषय होना चाहिए ?

श्रीधर : होना तो चाहिए, किन्तु मैं इधर देखता हूँ कि पंडितों की हार से उसका अहंकार बढ़ता जा रहा है । उसे अपनी विद्वत्ता का घमंड हो गया है । उसका गर्व सीमा का अतिक्रमण कर रहा है । यह मुझे सहन नहीं हो सकता ।

सुशीला : तो क्या आप मेरे लाल से ईर्ष्या करते हैं ?

श्रीधर : मूर्ख हो तुम भी । क्या पिता भी पुत्र से कभी ईर्ष्या कर सकता है ? क्या बीजांकुर अपने पुष्प से कभी ईर्ष्या करेगा ? किन्तु मैं यह सहन नहीं कर सकता कि मेरा पुत्र दंभी हो । मैं दंभी पुत्र का पिता होना अपमान समझता हूँ !

सुशीला : तो आपने उसे ताड़ना दी ?

श्रीधर : हाँ, उसे ताड़ना दी और उग्र रूप से !

सुशीला : क्या कहा आपने ?

श्रीधर : मैंने कहा कि तू महामूर्ख है, दंभी है, अज्ञानी है !

सुशीला : यह आपने भारवि से एकांत में कहा या पंडितों के सामने ?

श्रीधर : पंडितों के सामने । मुझे किसका संकोच है ? पंडितों के सामने ही मैंने अनुशासन किया !

सुशीला : पंडितों के सामने ही ? पंडितों ने क्या कहा ?

श्रीधर : कहेंगे क्या ? वे भारवि की ओर देखकर हँसने लगे । भारवि के स्वर में ही बोल कर वे उसका परिहास करने लगे और ताली पीटने लगे ।

सुशीला : और बेचारा भारवि ?

श्रीधर : भारवि ने एक बार व्यथित दृष्टि से मेरी ओर देखा । फिर ग्लानि से अपने हाथों से अपना मुख छिपा लिया और तब वह एक ओर चुपचाप चला गया ।

सुशीला : आपने रोका नहीं ?

श्रीधर : नहीं, यदि रोकता तो अनुशासन की मर्यादा कैसे रहती ?

सुशीला : मेरे लाल से अधिक प्रिय आपको अपने अनुशासन की मर्यादा थी ?

श्रीधर : सुशीला ! मोह में मत बहो । अनुशासन की मर्यादा पर बड़े से बड़े व्यक्ति का बलिदान किया जा सकता है !

सुशीला : ओह, आपके क्रोध को देखते हुए वह अब फिर घर लौट कर नहीं आयेगा । मेरा भारवि अब घर लौटकर नहीं आयेगा । आपने अनुशासन की वेदी पर उसका बलिदान कर दिया !

श्रीधर : क्यों ? इससे पहले भी मैंने उसकी अनेक बार ताड़ना की है । फिर भी वह घर आया है, इस बार क्यों नहीं आयेगा ?

सुशीला : उसे आना होता तो इस समय तक वह अवश्य आ जाता । कहीं वह ससुराल तो नहीं चला गया ?

श्रीधर : नहीं, वह मेरी आज्ञा के बिना उस ओर एक पग भी नहीं रख सकता !

सुशीला : तब कहीं उसने आत्महत्या.....

श्रीधर : चुप सुशीला ! यह शब्द अपने मुख से न निकालना ! श्रीधर पंडित का पुत्र इतना पतित नहीं हो सकता कि वह ऐसा जघन्य पाप करे ! वह अनियमित कार्यों से मुक्त है ।

सुशीला : तब निश्चय ही वह देशान्तर चला गया !

श्रीधर : हाँ, देशान्तर जा सकता है, किन्तु जिस श्रद्धा से वह तुम्हें सम्मान देता है, उसे देखते हुए वह तुम्हारी आज्ञा के बिना देशान्तर नहीं जा सकता !

(किसी के आने की ध्वनि)

सुशीला : (उल्लास से) वह...आया...(पुकार कर) भारवि-भारवि... मेरे लाल !

श्रीधर : (पुकार कर) भारवि !

(सेविका का प्रवेश)

सेविका : नहीं, मैं हूँ स्वामी ! आभा ।

सुशीला : आभा, भारवि नहीं आया ?

आभा : अभी तक कवि नहीं आये ? मैं तो समझती थी कि वे इस समय तक आगये होंगे ।

सुशीला : वे अभी तक नहीं आये । तू जा, जल्दी से उन्हें खोज ला । जल्दी जा, मेरी अच्छी आभा !

आभा : मैं अभी जाती हूँ, स्वामिनि ! अभी खोज कर लाऊंगी । किन्तु आप भोजन तो कर लें ! मैंने पाकशाला में जाकर देखा, आपका भोजन सजा हुआ रक्खा है, आपने उसे छुआ भी नहीं !

श्रीधर : तुमने भोजन नहीं किया, सुशीला ?

सुशीला : अब लाल के साथ ही भोजन करूँगी ! न जाने उसने कुछ खाया-पिया है या नहीं ! उसे ग्लानि है । ग्लानि में उसने खाया-पिया क्या होगा ? आभा, तू जा कवि को अपने साथ ही ले आ !

आभा : मैं अभी जाती हूँ ।

सुशीला : तू कहाँ जायगी ? जानती है भारवि इस समय कहाँ होगा ?

आभा : अतिथि-शाला में होंगे । बाहर से आये हुए पंडितों से वे प्रायः शास्त्रार्थ किया करते हैं । वहीं होंगे ।

सुशीला : अब वे वहाँ न होंगे ।...वहाँ न होंगे !

आभा : तब तो वे मालिनी-तट पर होंगे । वहाँ बैठकर वे अपनी कविताएँ लिखा करते हैं ।

सुशीला : रात में ? आभा, संभव है मालिनी-तट पर वे कुछ सोच रहे हों । नहीं, वहाँ भी वे न होंगे । उनकी लेखनी मौन होगी ।

आभा : तब जनपद में जाऊँगी ।

श्रीधर : हाँ, अधिक से अधिक वह किसी जनपद में जा सकती है, किन्तु तू अभी न जा आभा ! रात्रि अधिक हो गई है । मैं कल प्रातःकाल समस्त जनपदों में जाकर उन्हें खोज लाऊँगा ।

आभा : स्वामी, आज्ञा दें तो दो-एक जनपदों में अभी चली जाऊँ ? स्वामी के प्रताप से मुझे मार्ग में कोई भय नहीं होगा ।

श्रीधर : रात्रि में तू उसे खोज न सकेगी, आभा ! मैं ही जाऊँगा ।

आभा : जो आज्ञा । स्वामिनी भोजन कर लें तो बड़ी कृपा हो ।

सुशीला : आभा, तू जा, मैं भोजन न करूँगी । मुझे कष्ट न दे ।

आभा : मुझे क्षमा करें । एक निवेदन और है—महाकवि से परिचित एक युवती प्रवेश चाहती है । वह स्वामी के दर्शन की अभिलाषा रखती है ।

श्रीधर : मेरे दर्शन की ? मैं इस समय किसी से नहीं मिल सकूँगा !

सुशीला : आने दीजिये । संभव है, कवि से परिचित होने के कारण उससे लाल के सम्बन्ध में कुछ सूचना ही मिल सके । आभा, बुला ले !

श्रीधर : अच्छा, भीतर भेज दे ।

आभा : जो आज्ञा ।

सुशीला : गई ! आभा कहती है मैं भोजन कर लूं !

श्रीधर : सुशीला, मैं तुम्हारे हृदय के दुःख को समझता हूँ ! मैं निश्चय ही कल प्रातःकाल सभी जनपदों में जाकर भारवि की खोज कर उसे तुम्हारे पास ले आऊँगा ।

सुशीला : आपके अनुशासन की मर्यादा तो भंग न होगी !

श्रीधर : अनुशासन के स्थान पर अनुशासन और प्रेम के स्थान पर प्रेम है । प्रेम पर ही अनुशासन निर्धारित है और अनुशासन पर ही प्रेम । यदि प्रेम न हो तो अनुशासन का कोई मूल्य नहीं !

सुशीला : आप को विश्वास है भारवि किसी जनपद में मिल जायगा ?

श्रीधर : मुझे विश्वास है, जब वह अनियमित कार्यों से मुक्त है तो किसी न किसी जनपद में अवश्य मिल जायगा !

सुशीला : यदि नहीं मिला तो.....

श्रीधर : तो मैं राजकीय सहायता की प्रार्थना करूँगा । राजकीय शक्ति उसे कहीं से भी प्राप्त कर सकती है !

सुशीला : आप मुझ पर महान् उपकार करेंगे ।

श्रीधर : मोह के वशीभूत न बनो । तुम पर मेरा उपकार कैसा ? तुम शान्ति से शयन करो । मैं कल प्रातःकाल भारवि सहित लौटूँगा !

सुशीला : परसों से गया है मेरा लाल ! कौशेय वस्त्र धारण कर । पीत रंग का अधोवस्त्र और नील रंग का उत्तरीय । कुंचित केश । मस्तक पर पीत चंदन की पत्रावली, मध्य में अरुण-बिन्दु । शास्त्रार्थ के लिए जाते समय मैंने अपने हाथों से उसे पुष्पहार पहिनाया था । उसने मुझे प्रणाम किया था—स्नेह गद्गद् हो मैंने कहा—विजयी बनो । उसके मुख पर हल्की

मुस्कराहट थी । क्या जानती थी कि आज भी उसे पिता की भर्त्सना मिलेगी !

श्रीधर : भावुक मत बनो, सुशीला ! विश्राम करो । मैं तुम्हें वचन दे चुका हूँ कि तुम्हारा भारवि कल तुम्हारे पास होगा ।

सुशीला : आज ही हो सकता था वह मेरे पास, यदि आप पुत्र-प्रेम से अधिक शास्त्र-चिन्तन को महत्व न देते !

श्रीधर : मैं समझता था कि वह सदा की भाँति अवश्य घर लौट आयेगा । मैंने भी थोड़ी मर्यादा रखी । किन्तु उस मर्यादा की सीमा समाप्त हो गई । कल मैं जाऊँगी । हम उसकी पत्नी के प्रति भी तो उत्तरदायी हैं और वह यहाँ नहीं है !

सुशीला : मेरे लिये न सही तो उसकी पत्नी के लिए ही आप कवि की खोज कर लायें !

(भारती का प्रवेश)

भारती : मैं आ सकती हूँ ? प्रणाम करती हूँ; मेरा नाम भारती है ।

सुशीला : भारती ? आओ देवी ! तुम कवि भारवि से परिचित हो ?

भारती : बसन्त ऋतु में कोकिल के स्वर से कौन परिचित नहीं ? प्रभात में भैरव राग के स्वर किसे जागरण का मन्देश नहीं देते ? पूर्णिमा के आकाश में अमृत का कलश चन्द्रमा, अंधकार के हृदय में भी प्रकाश की मंदाकिनी प्रवाहित कर देता है । ऐसे ही है महाकवि भारवि । उन्हें कौन नहीं जानता ?

सुशीला : तुम उन्हें कब से जानती हो, देवी ?

भारती : गत पूर्णिमा के पर्व में उन्होंने जो शास्त्रार्थ किया था, उसमें शास्त्र को जैसे जीवन मिल गया । आज तक वेदान्त की सीमांसा इतनी सुन्दर मैंने नहीं सुनी जैसी महाकवि भारवि

के मुख से सुनी । जैसे ब्रह्म-ज्ञान मरुस्वती की वीणा पर नृत्य कर रहा हो ।

मुशीला : धन्य है मेरा कवि !

श्रीधर : इस समय तुम्हारे आने का अभिप्राय क्या है, देवी भारती ?

भारती : महाकवि के दर्शन ! उनका मत्संग ही तो ज्ञान का सागर है, जिसके तट पर बैठकर मैं अनुभूति की लहरे गिन सकती हूँ ।

श्रीधर : लेकिन, भागवि यहाँ नहीं है ।

मुशीला : हाँ, कवि अभी तक नहीं आया ।

भारती : मैंने तो उन्हें मालिनी-तट पर देखा था । सोचती थी कि इस समय तक वे यहाँ आ गये होंगे ।

मुशीला : कब देखा था ? किस समय देखा था देवी ?

भारती : आज प्रातःकाल ऊषा बेला में !

मुशीला : तुम उससे मिली थी ?

भारती : नहीं ! वे उस समय ध्यान-मग्न थे । ज्ञान होता था जैसे वे भारती की उपासना कर रहे हों ।

मुशीला : भारती की ?

भारती : (हँसकर) मेरी नहीं, वीणापाणि भारती की, मरुस्वती की ! मैंने उनका ध्यान भंग नहीं करना चाहा । सोचा, बाद में उनसे वार्तालाप करूँगी ।

मुशीला : फिर वार्तालाप किया ?

भारती : नहीं, वे उद्विग्नता से उठकर एक ओर चले गये; मैं उन्हें पान नहीं कर सकी ।

मुशीला : उसके बाद पता पाया कि वे कहाँ गये ?

भारती : नहीं, फिर मैं न जान सकी कि वे कहाँ गये ।

सुशीला : वे तब से आये भी नहीं । उनके पिता भी तब से उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं ।

भारती : ये उनके पिता हैं । प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला : आयुष्मती बनो । देवी भारती ! भारवि जैसे ही आएँगे, तुम्हारे आने की सूचना दे दी जायेगी ।

भारती : मैं कृतार्थ हुई । किन्तु आप कष्ट न करें । कल प्रातःकाल मैं पुनः सेवा में उपस्थित हो जाऊँगी ।

सुशीला : यदि इस बीच तुम्हें उनकी सूचना मिले देवी, तो मुझे सूचित कर देना । मैं कृतार्थ होऊँगी ।

भारती : अवश्य ! तो मुझे आज्ञा दें । प्रणाम करती हूँ ।

सुशीला : आयुष्मती बनो !

(प्रस्थान)

सुशीला : देवी भारती से भी मेरे लाल की कोई सूचना नहीं मिली !

श्रीधर : अच्छा, अब तुम विश्राम करो, शान्त मन से, स्थिर चित्त से ।

सुशीला : विश्राम ! स्थिर-चित्त ! (व्यंग्य की दबी हँसी) माँ के लिये विश्राम और स्थिर-चित्त, जब उसका पुत्र उसके पास नहीं है ! आप विश्राम करें, शास्त्र-चित्तन समाप्त करें !

श्रीधर : मैं भी उठता हूँ । तुम अपनी शैया पर जाओ; बहुत देर से आसन पर बैठो हो । पैर में शून्यता हो जायेगी । कल जब भारवि आयेगा तो उठ भी न सकोगी !

सुशीला : उठ भी न सकूँगी ! आप शयन करें, मैं अपनी शैया पर चली जाऊँगी !

श्रीधर : उठो, मैं सहायता दे दूँ । स्थिर-चित्त से शयन करो । उठो मैं वचन देता हूँ कि कल भारवि को अपने माथ ही ले आऊँगा !

सुशीला : आप मेरे जीवन का सबसे बड़ा कार्य करेंगे । चलिए !
(सुशीला उठती है और उठकर अपनी शैया पर जाती है ।)

श्रीधर : अब ठीक है । मैं दीपक मन्द कर देता हूँ । यह लो अब इस शैया पर शयन करो । मैं भी शयन करते हुए सोचूँगा कि सबसे पहले कहाँ जाऊँ !

सुशीला : वह अपनी ग्लानि में कही दूर चला गया होगा !

श्रीधर : चाहे जितनी दूर चला जाय । मैं तो उसे लाऊँगा ही ।

सुशीला : लाइए—अवश्य लाइए । उसके बिना मैं जी न सकूँगी !
पूर्णमा, के चन्द्र की तरह वह मेरा एक ही लाल है ।
महाकवि, महापंडित, भारवि !

श्रीधर : (नेत्र बंद किए चिन्तित मुद्रा में) हूँ ! (कुछ शान्ति) शयन करो ।

(कुछ देर तक स्तब्धता)

सुशीला : (कुछ क्षण बाद) मुझे नींद नहीं आ रही है—मन न जाने क्या-क्या सोचता है !

श्रीधर : अपना मन स्थिर करो । (कुछ शान्ति) ऊपर देखो, आकाश में कितने तारे हैं—ये एक दूसरे से कितनी दूर है, किन्तु इनमें से कोई चिन्तित नहीं है । सभी समान रूप से चमक रहे हैं ।

सुशीला : इन तारों में कोई माता न होगी !

श्रीधर : अपने मन को कल्पना से मुक्त करो । सुशीला, ईश्वर की शक्ति में विश्वास रखो । बीज से फूल कितनी दूर रहता है, किन्तु बीज कभी मलिन नहीं होता । वह फूल को प्रफुल्लित रखने के लिये निरन्तर रस भेजा ही करता है । तुम भी मंगल-कामना करो कि जहाँ भी तुम्हारा पुत्र हो, सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे !

सुशीला : मेरा पुत्र जहाँ भी रहे, सुखी रहे, प्रफुल्लित रहे !

श्रीधर : हाँ, ईश्वर की शक्ति कण-कण में वर्तमान है। वह सबका पोषण करता है, उस पर विश्वास रखो।

सुशीला : मैं विश्वास रखती हूँ।

श्रीधर : अब सो जाओ। विश्वात्मा का ध्यान करते हुए। मैं वही श्लोक पढ़ता हूँ। मेरे स्वर में अपना स्वर धीरे-धीरे मिलाकर शयन करो.....(श्रीधर धीरे-धीरे श्लोक पढ़ते हैं और सुशीला उनके स्वर में स्वर मिलाती है।)

ॐ ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् त्येन त्यक्तेन भुञ्जीथा.....(कुछ खटका होता है।)

सुशीला : (चौक कर) यह खटका कैसा ! क्या मेरा भारवि आगया ?

श्रीधर : अरे; यह तो हवा का भोंका है, जिससे द्वार पर शब्द हुआ है। तुम व्यर्थ ही इतनी व्यग्र हो। सुशीला, शांत रहो।

सुशीला : मैं शांत हूँ। शब्द से मुझे भ्रम हुआ कि मेरा कवि आ गया ! वह भी आते समय द्वार पर ऐसा ही शब्द करता था।

श्रीधर : तुम्हारा भारवि कल अवश्य आ जायगा। तुम शान्त होओ। देखो, प्रकृति भी शान्त है।

सुशीला : मैं शान्त कैसे रहूँ, चुप अवश्य हो जाऊँगी, किन्तु इस शान्ति में भी इस जुगनू को देखो जो अपने जीवन का प्रकाश लिये हुए चारों ओर उड़ रही है—शायद इसका भी लाल कहीं खो गया है ! कीट-पतंग तक अपने लाल को खोज सकते हैं, मैं अपने जीवन का प्रकाश लिए शांत रहूँ, चुप रहूँ। हाय रे मनुष्य ! तू कीट-पतंगों से भी गया-बीता है !

श्रीधर : सुशीला, मैं बहुत दुखी हूँ तुम्हें देखकर। यदि तुम इतनी अशान्त हो तो मैं अभी ही तुम्हारे पुत्र को खोजने के लिए जाता हूँ।

सुशीला : अन्धकार में वह कहाँ मिलेगा ! प्रातःकाल जाइए। किन्तु मेरी प्रार्थना है कि अब आप मेरे लाल की निन्दा करना छोड़ दें। आप सबके सामने उसे मूर्ख और विकल-बुद्धि बतलाया करते हैं इससे उसे मर्मान्तक कष्ट होता है। वह पण्डित है, बुद्धिमान है, अब से आप ऐसा न करें।

श्रीधर : सुशीला, मैं आज तुम्हें एक बात बतलाऊँ ?

सुशीला : मेरे लाल के सम्बन्ध में ?

• श्रीधर : हाँ, भारवि के सम्बन्ध में। बात यह है कि मेरा लाल आज संसार का एक सर्वश्रेष्ठ महाकवि है। दूर-दूर देशों में उसकी समानता करने का किसी को साहस नहीं है। वह शास्त्रार्थ में बड़े से बड़े पंडितों को पराजित कर चुका है। उसका पाण्डित्य देखकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है ! किन्तु मेरे भारवि के मन में धीरे-धीरे अहंकार स्थान पाता जा रहा है। मैं चाहता हूँ कि भारवि और भी अधिक पण्डित और महाकवि बने। पर अहंकार उन्नति का बाधक है। मैं उस अहंकार पर अंकुश रखना चाहता हूँ। जिसे अपने पाण्डित्य का अभिमान हो जाता है, वह अधिक उन्नति नहीं कर सकता। यही कारण है कि मैं समय-समय पर उसे मूर्ख और अज्ञानी कहता हूँ। प्रशंसा तो सभी करते हैं, किन्तु अधिकारी से निन्दा भी होनी चाहिए। मैं नहीं चाहता कि अहंकार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय !

सुशीला : (विह्वल होकर) क्या कहा आपने ?

श्रीधर : मैं नहीं चाहता कि अहंकार के कारण मेरे पुत्र की उन्नति रुक जाय !

सुशीला : तो जो आप मेरे लाल पर क्रोध प्रकट करते हैं, वह सच्चा नहीं है ?

श्रीधर : अणुमात्र भी नहीं ! इस क्रोध में पुत्र के प्रति मंगल-कामना छिपी है। मेरा पुत्र और भी विद्वान् हो, और भी यशस्वी बने !

सुशीला : ओह, आप कितने महान् हैं ?

(यकायक दरवाजा खोलने की तीखी आवाज होती है। भारवि हाथ में तलवार लिए लड़खड़ाते हुए आते हैं।)

भारवि : पिता ! पिता !!

सुशीला और श्रीधर : (सम्मिलित स्वर में) भारवि !

भारवि : हाँ, मैं भारवि हूँ !

सुशीला : (विह्वल होकर) बेटा ! तू कहाँ रहा मेरे बेटे ? तू इतना निष्ठुर कैसे हो गया ? तू कहाँ था ? तेरी, इतनी.....तेरी इतनी..... तू क्यों चला गया था ?.....कहाँ था, मेरे बेटे ? (सिसकने लगती है।)

भारवि : माँ, शान्त रहो। अपने चित्त को स्थिर रखो।

सुशीला : तेरे पिता भी कहते हैं—अपने चित्त को स्थिर रखो, तू भी यही कहता है। मैं कहाँ ले जाऊँ अपने चित्त को ? प्रभु, इस संसार में माँ के चित्त को स्थिर क्यों नहीं बनाया ?

भारवि : माँ मैं यह कहता हूँ.....

सुशीला : बेटा, अब मैं कोई बात नहीं मानूँगी; तू बतला कि तूने अभी तक कुछ खाया या नहीं ? मैं दो दिनों से तेरा भोजन लिए बैठी हूँ !

भारवि : मैं इतनी ग्लानि में हूँ माँ, कि सम्भवतः मुझे जीवन-भर भूख न लगे !

सुशीला : तो तूने अभी तक कुछ नहीं खाया ?

भारवि : नहीं माँ !

सुशीला : ओह, मेरा लाल, दो दिनों का भूखा है ! मैं अभी भोजन लाऊँगी; मैं अभी लाऊँगी ! (नेपथ्य में पुकारती हुई जाती है । आभा, आभा, कवि आ गया । उसने अभी तक भोजन नहीं किया । कहाँ है, कहाँ है उसका भोजन...भोजन...')

भारवि : पिता, मैं आपका पुत्र होने योग्य नहीं हूँ । इस तलवार से मेरा मस्तक काट दीजिए !

श्रीधर : वत्स, तुम्हारे मुख में ये शब्द शोभा नहीं देते । अपनी मर्यादा सुरक्षित रखो । मैं फिर कहता हूँ कि तुम मूर्ख हो ! विकल-बुद्धि हो !!

भारवि : सचमुच ही मैं मूर्ख हूँ ! विकल-बुद्धि हूँ !! और यह तभी प्रमाणित होगा जब आप मेरा मस्तक तलवार से काट देंगे ।

श्रीधर : मेरे वाक्यों का प्रमाण तलवार के प्रमाण की आवश्यकता नहीं रखता ! तलवार का प्रमाण निर्बलों का प्रमाण है । निर्भीक वाक्य सबलों का प्रमाण है ।

भारवि : किन्तु पिता, यह तलवार मेरा मस्तक नहीं काटेगी, उम ग्लानि को काट देगी जो पिछले दो क्षणों से मेरे जीवन को भ्रंश की भाँति भकभोर रही है !

श्रीधर : ग्लानि से जीवन उत्पन्न नहीं होता वत्स, जीवन से ग्लानि उत्पन्न होती है और इस तरह ग्लानि प्रधान नहीं है, जीवन प्रधान है । जब तुम जीवन के अधिकारी हो तो जीवन की शक्ति से ही ग्लानि को दूर करो, तलवार की अपेक्षा क्यों करते हो ? और हाँ, तुम तो महाकवि हो ! तुम्हारे हाथों में लेखनी चाहिए, तलवार नहीं । यह तलवार कैसी ?

भारवि : पिता, मैं महाकवि नहीं हूँ; तभी तो हाथों में लेखनी नहीं है, तलवार है ! जीवन का स्वामी नहीं हूँ; तभी तो ग्लानि का मुझ पर अधिकार है !!

श्रीधर : ग्लानि काला बादल है वत्स, जो जीवन के चन्द्र को मिटा नहीं सकता; कुछ क्षणों के लिए उसके प्रकाश को रोक ही सकता है। उत्साह के प्रवाह से बादल को हटा दो !

भारवि : वह रक्त के प्रहार से ही हटेगा, पिता ! और वह रक्त मेरे मस्तक का होगा !

श्रीधर : मस्तक में सहस्रदल है वत्स, जिसमें ब्रह्म का निवास होता है। ग्लानि के पोषण के लिए ब्रह्मद्रव की आवश्यकता नहीं है। किन्तु मैं यह पूछता हूँ कि इस मूर्खता के धूमकेतु की रेखा कितनी लम्बी जायगी ? मैंने तुम्हारे दोष दिखलाए तो उन्हें स्वीकार करना चाहिए था, यह नहीं कि ग्लानि से दो दिन घर आने का नाम भी न लो ! बेचारी माँ को दुखी और चिंतित रखो ! उसने तुम्हारे वियोग में दो दिनों से भोजन नहीं किया। अब आधी रात में तुम आये हो, तुम्हारे हाथ में यह तलवार है और पिता से तुम अपना ही मस्तक काटने को कहते हो। मूर्ख पुत्र ! मेरे हृदय में पिता की भावना आज तुमसे लांछित हो रही है !

भारवि : पिता, यह सब स्वीकार करता हूँ। आपसे विवाद करना मुझे और भी कष्टप्रद होगा। किन्तु मैं अपनी निर्बलता आपके सामने स्पष्ट करना चाहता हूँ। पिछले दो दिनों का कार्य प्रतिशोध से परिचालित था !

श्रीधर : प्रतिशोध !

भारवि : हाँ पिता, प्रतिशोध ! आपने मुझे सदैव लांछित किया। जब मैं शास्त्रार्थ में विजयी हुआ आपने मुझे सार्वजनिक रूप से

लांछित किया। जिन पण्डितों को मैं पराजित करता था, वे ही आपके वाक्यों को लेकर मेरा परिहास करते थे—सभाओं में लांछित करते थे। दो बार जब आपने सब पण्डितों के सामने निन्दा की तो मैं क्रोध और ग्लानि से भर गया। मैं घर नहीं लौटा सका। मेरी सारी विजय की उमंग रसातल में चली गई। मैंने समझ लिया कि जब तक मेरे पिता वर्तमान हैं, तब तक इसी प्रकार लांछित होता रहूँगा !

श्रीधर : यह सत्य है !

भारवि : मैं आत्म-हत्या नहीं कर सकता था, क्योंकि वह एक जघन्य पाप है। मैंने अनेक बार सोचा—पिता को तो पुत्र की उन्नति से सुख होना चाहिए; उसके शरीर में हर्ष से रोमांच हो आना चाहिए; किन्तु पिता को मेरी उन्नति से अप्रसन्नता होती है; पिता को मेरे दोष दीख पड़ते हैं, वे मुझे लांछित करते हैं। एकांत में लांछित करने तो कोई हानि न होती, किन्तु विद्वन्मंडली में वे मेरा अपमान करते हैं !

श्रीधर : मेरा अभिप्राय विद्वन्मंडली में ही तुम्हारे दोष दिखलाने का रहा है !

भारवि : जिन पंडितों ने मेरे ज्ञान को अपने गिर पर पुष्पमाला की भाँति धारण किया, उन्हीं पंडितों के समक्ष मेरा अपमान मुझे शूल की भाँति खटक गया और आपके प्रति क्रोध अन्तिम सीमा तक पहुँच गया !

श्रीधर : (मुस्कराकर) अन्तिम सीमा तक ! फिर तुमने क्या किया ?

भारवि : मैं पूरे आठ प्रहर तक मन ही मन जलता रहा ! फिर मैंने यही ठीक समझा कि मैं पिता के जीवन को समाप्त कर दूँ !

श्रीधर : हाँ,...पिता के ?...कितना अच्छा होता मुझे अपनी मृत्यु पुत्र के हाथों मिलती !

भारवि : मैंने अपने मित्र विजय घोष के शस्त्रागार से यह पैनी तलवार चुनी, जिसकी तीखी धार के स्पर्श-मात्र से जीवन का सूक्ष्म तंतु बिना किसी शब्द के क्षण-मात्र में कट जाता। मैं मंथ्या से ही इस घर के कोने में छिपा हुआ था। जब आधी रात में माता जी और आप निद्रा में लीन रहते तो मैं दबे पाँव आकर आपकी ग्रीवा पर यह तलवार रख देता। माता जी को भी ज्ञात न होता कि वे जीवन की किम दिशा में चली गई हैं। प्रातःकाल जब उन्हें ज्ञात होता और नगर में यह बात फैलती तो मैं भी आता। मेरा प्रायश्चित्त यह होता कि जीवन भर माता की कठिन सेवा कर उन्हें वैधव्य के कष्ट का अनुभव न होने देता।

श्रीधर : फिर तुमने क्यों नहीं किया ? यह कार्य तो तुम अब भी कर सकते हो !

भारवि : पिता ! मुझे और लांछित न कीजिए। मेरी ग्लानि को अधिक न बढ़ाइए। हाय रे, माता का हृदय, वे क्षणमात्र भी न मो सकी..... आपको छेड़ती नहीं। उन्होंने आपको सोने न दिया और जब बातों ही बातों में मुझे यह ज्ञान हुआ कि आपकी—आपकी यह पुत्र-वत्सलता ही है कि आप पंडितों के बीच मेरी निंदा कर मेरे गर्वाकुर को नष्ट करते हैं, मेरे अहंकार को दूर कर मेरी अधिकाधिक उन्नति चाहते हैं, तो मुझ पर वज्रपात हुआ। मेरा सारा क्रोध पानी बन कर मेरी आँखों से अश्रुधारा के रूप में निकल पड़ा। ओह पिता, आप कितने महान् हैं ! प्रतिदिन मेरी उन्नति के अभिलाषी ! मेरे अहंकार को दूर कर मुझे साधना के पथ

पर बढ़ाने वाले पिता ! मैं पापी हूँ। पितृ-हत्या से प्रतिशोध लेने वाला यह नारकीय-पुत्र आज प्रायश्चित्त-रूप में अपना मस्तक कटवाने की भिक्षा माँगता है ! (एक सिसकी)

श्रीधर : शान्त, शान्त ! किन्तु न तो मैं प्रतिशोध लेता हूँ और न भिक्षा देता हूँ !

भारवि : फिर भी मैं दंड चाहता हूँ !

श्रीधर : किन्तु मूर्ख, पितृ-हत्या का दंड पुत्र-हत्या नहीं है !

भारवि : फिर भी शास्त्र की आज्ञानुसार जो दंड हो, वही दीजिए !

श्रीधर : किन्तु मैंने तुम्हें क्षमा किया वत्स, दंड की व्यवस्था पाप के स्थिर रहने में है। जब यह पाप स्थिर नहीं रह सका तब दंड को आगे बढ़ने की आवश्यकता नहीं है !

भारवि : आपसे शास्त्रार्थ करना मेरी अल्पज्ञता है पिता ! पाप के लिए न सही मेरे प्रायश्चित्त के लिये भी तो कुछ व्यवस्था होनी चाहिए !

श्रीधर : तेरे लिये पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है !

भारवि : आप महान् हैं, पिता ! किन्तु जब तक आप प्रायश्चित्त की व्यवस्था मेरे लिए न करेंगे, तब तक मेरे जीवन में एक ऐसी आग लगी रहेगी, जिसका बुझाना मेरे लिये असंभव होगा ! पिता अपनी पुत्र-वत्सलता में अडिग रहे और पुत्र पितृ-हत्या का निश्चय कर भी अदंडित रहे ? मेरे लिये क्षमा असह्य होगी !

श्रीधर : माता की सेवा कर सहा बनाओ ।

भारवि : पिता माता की सेवा तो मेरे जीवन की चरम साधना है ही, किन्तु यदि आप चाहते हैं कि आपका भारवि जीवित रहे तो उसे दंड दीजिए !

श्रीधर : पुत्र यदि जीवन को ही दंड समझ ले तो क्या हानि है ?

भारवि : पिता, मैं जीवन को दंड नहीं समझना चाहता । यह ब्रह्म की विभूति है । इसे चिन्ता में घुलाना, पाप में लपेटना, दुख में बिलखना, सबसे बड़ा अपराध है । इससे तो अच्छा है कि मैं आपकी अनुमति से दंड-स्वरूप आत्महत्या जैसे जघन्य पाप.....

श्रीधर : (बीच ही में) भारवि !

भारवि : पिता ! मेरे मन की शान्ति के लिए आप शास्त्रानुसार दंड की व्यवस्था दे !

श्रीधर : छः मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना !

भारवि : छः मास तक श्वसुरालय में जाकर सेवा करना और जूठे भोजन पर अपना पोषण करना ! बस ठीक, आज से यह प्रायश्चित्त प्रारम्भ हुआ । यह लीजिए तलवार (फेंक देता है ।) इसे आप कृपया मेरे मित्र विजय घोष के पाग पट्टा दीजिए और मुझे इस प्रायश्चित्त की पूर्ति की आज्ञा दीजिए !

श्रीधर : किन्तु यह प्रायश्चित्त इसी क्षण से क्यों प्रारम्भ हो ?

(नेपथ्य में 'बेटा, यह गरम-गरम भोजन जल्दी कर ले !' आवाज धीरे-धीरे पास आती हुई—'तू बहुत भूखा होगा । जल्दी से भोजन कर ले ।')

सुशीला : (पास आकर) ला, मुझे मैं अपने हाथों से खिलाऊँ !

भारवि : नहीं, माँ ! मुझे जूठा भोजन चाहिए !

सुशीला : (आश्चर्य से) जूठा भोजन !

भारवि : हाँ माँ, आज से छः मास तक जूठा भोजन ही मेरा खाना है !

सुशीला : (आश्चर्य से) छः महीने ?

भारवि : तूने भी तो भोजन नहीं किया है !

सुशीला : बेटा, तू खा ले ! मेरी आत्मा को तृप्ति हो जाएगी ! मैं जी जाऊँगी !!

भारवि : नहीं, पहले मैं अपने हाथों से तुम्हें एक घास भोजन खिला दूँ !

सुशीला : पहले तू खा ले !

भारवि : नहीं माँ, मेरी प्रार्थना मान ले । मैं पहले तुम्हें खिला दूँ ।

सुशीला : (घास लेकर) धन्य मेरे लाल, अब ले, तू खा ले !

भारवि : नहीं माँ, मुझे क्षमा करो । छः महीने बाद तुम्हारे इन हाथों से भोजन कळंगा !

सुशीला : छः महीने बाद ! यह बात क्या है ? देखिए, (श्रीधर की ओर) यह छः महीनों की बात कैसी ?

श्रीधर : (गम्भीर स्वर में) यह उसका प्रायश्चित्त !

सुशीला : प्रायश्चित्त ! कैसा प्रायश्चित्त ?

भारवि : यह पिता जी स्पष्ट करेंगे । अब मुझे देर हो रही है । पिताजी, आज्ञा दें ! माता आज्ञा दीजिए ! आप दोनों के चरणों की धूलि अपने सिर पर रख लूँ । अब मैं अपने आप से प्रतिशोध लूँगा । माता, प्रणाम ! पिता, प्रणाम !

सुशीला : भारवि, मेरे लाल !

श्रीधर : गया भारवि !

सुशीला : मेरे लाल, लौट आओ !...

(नेपथ्य में भारवि का स्वर—‘प्रतिशोध ! ‘प्रतिशोध !’ धीरे-धीरे परदा गिरता है ।)



ऊसर

श्री भुवनेश्वर प्रसाद

पात्र

लड़का

गृहस्वामी

युवक

मोटीरमणी

गृहस्वामिनी

छोटी लड़की

[सीन : एक मध्यवर्ग बँगले का ड्राइङ्ग-रूम-कमरा; छोटा और नीचा पटा है। दीवारें सादी हैं, पर कुछ तस्वीरें आज ही टांगी गई हैं, जो कीले गाढ़ने के ताजे निशानों से मालूम होता है। दो दरवाजों और तीन खिड़कियों पर पर्दे पड़े हैं, वे रोज ही पड़े रहते हैं; आज सिर्फ खिड़कियों के पर्दों के नीचे की फटी हुई कोरें तुरप दी गई हैं। भीतर के दरवाजे पर जाली का कटा हुआ पर्दा है, जिसके लगाने के निशान मंले और पुराने हैं। कार्निस पर बहुत-सी तस्वीरें और कुछ बड़े घोंघे और शंख रखे हैं। एक 'प्लास्टर आव पेरिस' का गांधी का वस्त्र भी है। फरनीचर कमरे के लिए कुछ ज्यादा, और अक्सर बेमेल है—गहरी नीली सीट पर दो हरे कुशन हैं, एक बरेली बुड-वक्स का भी सीट है जिस पर रेशम से एक बड़ी बत्तख कटी हुई, काली बक्स पड़ी है; कुछ बेंत की कुर्सियाँ हैं जो नंगी हैं और भीतर के दरवाजे के सामने पड़ी हैं—ऐसी कि बिना उनको हटाये कोई भीतर से आ-जा नहीं सकता। बाहर का ताजा धुला हुआ बरामदा कमरे से दिखाई देता है। जहाँ पायदान पर एक भूरा पेकनीज़ दहलीज़ पर सर रखे सो रहा है और एक किरमिच की कुर्सी पर एक युवक हाथों को जाँघों में भींचे टाँगें हिलाता हुआ, पोर्च में खड़ी बड़ी गीली कार की तरफ बड़ी देर से—करीब-करीब जब से वह लाल सुर्खी को दलती हुई और अपने बेलुन टायरों से छोटी-छोटी कंकड़ियाँ उड़ाती हुई आई है, देख रहा है। दिसम्बर की शाम कुछ-कुछ गाढ़ी हो चली है।

सहसा भीतर के दरवाजे से एक आठ वर्ष का लड़का त्योंहारी कपड़े पहने एक कुर्सी को ढकेलता आता है। बरामदे में कुत्ता और युवक दोनों चौंक पड़ते हैं। कुत्ता एक बार समझदारी से गुर्राकर फिर सिर टिका देता है और युवक तनिक अपराधी-सा मोटर से नज़र हटा लेता है। लड़का सीधा कुत्ते के पास जाता है, उसका एक पैर का हौज सरक कर नीचे आगया है, जिससे उसकी सफेद बेराठी पिंडली दिखाई दे रही है।]

लड़का : (कुत्ते को जूते से सहलाते और अँगुली चटाते) मेरा पिप्पा ! तुम्हें कोई नहीं पूछता, तुम यहाँ अकेले पड़े हो, मेरा बू—बी ! (वहीं बंठ जाता है, कुत्ता वैसे ही आँख बन्द किये कान और दुम हिलाता है) तुम मँले हो...देखो चुपके से जब सब सो जाँय, तो तुम हमारे बिस्तर पर आ जाना, हम तुम तो भाई-भाई हैं। हम, तुम, ह...म (कुत्ते को उठाता-सा है।)

(भीतर वाले दरवाजे से कुर्सियों को ढकेलते हुए एक अधेड़ आदमी का प्रवेश। उसके चारों ओर गृह-स्वामी का हठ है, वह आते ही कुछ जोर से कहना चाहता है, पर उसका कर्तु हस्तरी किया सूट, खर्चीली काट के बाल अनजाने उसे रोक देते हैं। लड़का कुत्ते को एक बारगी छोड़ कर कमरे में आ जाता है, पर कुत्ता भी एक आकस्मिक साहस से बच्चे की टाँगों से चिपट कर खेलने लगता है।)

गृहस्वामी : (दियासलाई से दाँत खोदते) यह क्या बदतमीजी है। भीतर मेहमान आये हैं। तुम यहाँ कुत्ते के साथ शरारत कर रहे हो ! (कुर्सियाँ देखते हुए) और यह सब कुर्सियाँ बरबाद करदीं.....

लड़का : (चट से) कुर्सी ? कहाँ ? ये तो आपने हटाई हैं ।

गृहस्वामी : (खिड़की के बाहर थूक कर) और अंग्रेजी तो आप सब भूल गए, अब कभी मेहमान आयें तो आप अपने ट्यूटर के साथ.....

(थूकता है । लड़का बाहर की ओर देखता है और युवक जो गृहस्वामी के आते ही उठ कर खम्बे के सहारे खड़ा हो गया है भीतर की तरफ धीरे-धीरे बढ़ता है ।)

गृहस्वामी : (युवक से) तुम कहाँ गये थे...? मैं कहता हूँ कि जब रात को तुम्हें पढ़ना हुआ करे तो शाम को साइकिलबाजी न किया कीजिए । (थूकता है) भाई जान, इसमें आप ही का फायदा है !

युवक : (चुप है, जैसे चुप रहकर वह उसे हरा देगा ।)

गृहस्वामी : और तुम भीतर आ सकते थे...(सहसा) और तुमने चाय कहाँ पी...

युवक : जी नहीं ।

(गृहस्वामी जैसे इस जवाब से असन्तुष्ट हो उठा । उसने दियासलाई बाहर फेंक दी और ट्यूटर (युवक) की तरफ से फिर कर एक कुर्सी पर बैठ गया, फिर उठकर बत्ती जला दी । उसने सन्तोष से देखा और फिर बैठ गया— ट्यूटर अनजाने खिसक कर लड़के के पास आना चाहता है । लड़का चुपचाप कुत्ते की तरफ बिना देखे टाँगों से खेल रहा है ।)

ट्यूटर : आज तो मिसेज सिम्बल अच्छी हैं ?

गृहस्वामी : (जैसे उसने मिसेज सिम्बल का अपमान किया हो ।) क्या अच्छी हैं । ज़रा-सी पार्टी पर आप देखिए हफ्ते-भर

स्ट्रेण्ड हार्ड से पड़ी रहेंगी । अब उन लोगों को धूम-धूम कर मकान और बाग़ दिखाया जा रहा है । फिर हम लोगों की.....

ट्यूटर : मैं आज आप से सुबह से कुछ कहना चाहता था, पर आप सुबह से बिजी थे और शायद कल आप दौरे पर चले जायेंगे...?

गृहस्वामी : (एकटक उसकी तरफ देखता है जैसे यह कोई बड़ा बेहूदा सवाल है ।)

ट्यूटर : मैं सोचता हूँ कि यह इन्टेलिक्चुअल एक्सपेरीमेंट का जीवन जो मैं.....

(कुत्ता चीख पड़ता है शायद उसका पैर जूते से कुचल गया है । ट्यूटर एक छोटी घोड़ी के समान रुक जाता है । गृहस्वामी उछल पड़ता है) ।

गृहस्वामी : देखो जी... (लड़का कुत्ता बगल में दबाकर भीतर भाग जाता है ।)

गृहस्वामी : (ट्यूटर के बोलने का इन्तज़ार करके) मैं इस भीड़-भड़के से बहुत भड़कता हूँ और औरतों को तुम नहीं जानते, जब बाहर के आदमी होंगे तो वे बिलकुल दूसरी ही हो जायेंगी और अपने पति से भी यही उम्मीद करेंगी । मैंने आपके टेबुल पर फिंगर बाउल, मैंने सुनी भी न थी पर मेरी मेम साहब शायद यह दिखलाना चाहती थीं कि जैसे हम लोग हफ्ते में दस दिन फिंगर बाउल बरतते हैं—हुँह ..

(ट्यूटर के हँसने का इन्तज़ार करता है ।)

और अगर किसी ने कुर्सी पर गीला तौलिया टाँग दिया

तो हर एक आदमी को वह निशान देखना पड़ेगा—जैसे वह कोई क्यूनिज्म का डिजाइन हो ।

ट्यूटर : (गम्भीरता से) अब तो मिसेज सिम्बल अच्छी है पहले से ?

गृहस्वामी : अच्छी क्या हैं ! (रुककर) उम्र का तकाजा है । अब देखो वार्डम साल की मैरिड लाइफ में—(रुक जाता है जैसे ट्यूटर से ये बातें नहीं की जा सकतीं ।)

ट्यूटर : (नीची नज़र, हाथ से हाथ दबाये) मैं आपसे कुछ कहना चाहता था...मुझे आपके यहाँ पूरे दो महीने हो गये...

गृहस्वामी : (बाहर की आवाज़ों को सुनते हुए) मैं सब समझ सकता हूँ, यह आपकी मेहरबानी है, पर मैं मजबूर हूँ । आमदनी का यह हाल है—उजला खर्च । मैं कतई मजबूर हूँ । वह मदरामी मेम २५ पर, तैयार थी; मुझे कहना न चाहिए । मैंने सिर्फ आपकी इमदाद की गरज से, समझे, यह इन्तज़ाम किया था ।

ट्यूटर : मुझे अफसोस है !

गृहस्वामी : (कुछ समझ नहीं पाता) तो तुम बाइसिकल पर कहाँ-कहाँ गये थे ?

ट्यूटर : मैं बाइसिकल पर कहीं नहीं गया; मैं गया ही नहीं... (एक बारगी रुक जाता है ।)

(सन्नाटा छा जाता है । पर यह साफ है कि किसी का बोलना जरूरी है ।)

गृहस्वामी : (टाँग हिलाते) मेरा ज़िन्दगी का एटीट्यूड बिल्कुल मुस्तलिफ है । तुम अपने सोशलिज्म-ओशलिज्म के जोश में शायद यह समझ बैठे हो कि ज़िन्दगी का गहरा-से-

गहरा मतलब तुम्हारे लिये साफ हो गया। जैसे कोई बड़ा सरकश घोड़ा तुम्हारे काबू में आ गया; पर जिन्दगी अगर इस तरह लटकों और फारमूलों में बाँधी जा सकती तो, आज तक कब की खत्म हो जाती। जी...साहब सोशलिस्ट है पर आज जो कुछ भी हम 'कुत्तों' की समाज से आप इन्सानों को मिला है हम वापस ले लें—

(ट्यूटर साफ है कि इन बातों को निरर्थक समझता है।)

हाँ हमारे स्कूलों, यूनिवर्सिटियों की तालीम, हमारी लाइब्रेरियाँ, हमारे बाज़ार, हमारे.....

ट्यूटर : (उठकर बाहर खिड़की की तरफ भाँकता है। गृहस्वामी भी उठ खड़ा होता है।)

गृहस्वामी : क्या वे आ रहे हैं ?

ट्यूटर : (चुपचाप बाहर भाँक रहा है।)

गृहस्वामी : यह कैसी पार्टी है ! (टहलता हुआ) आम लोग वाकई... (फिर बैठ जाता है) मैं कहता हूँ कि आने वाली जेनेरेशन चाहे वह विल्लियों की हो या सर्पों की, हमसे अच्छी होगी, हमसे...

ट्यूटर : (मुस्कराता है) वे शायद पीछे से पार्क में चले गए।

गृहस्वामी : (चौंक कर) पार्क में ! और कुसुम की तबियत स्ट्रेण्ड हार्ट, कैफिया स्परीन...मैंने एक किताब पढ़ी थी, उसमें हमारी सभ्यता, तहजीब की तसबीह एक बड़ी दुकान से दी गई थी—ऊपर, ऊपर, ऊपर—चढ़े चले जाइये, पर नीचे ज़मीन की आँतें हमें हज़म करने के लिए बेताब हैं। वाकई आने वाली जेनेरेशन—पर मैं कहता हूँ कि कोई

जेनेरेशन आती नहीं। यहीं जमीन की आँतें जब बजाय हजम करने के कै कर देती हैं...

(भीतर कुछ आवाजें सुनाई देती हैं। गृहस्वामी सहसा ट्यूटर की तरफ कड़ाई से देखता है। ट्यूटर उस नज़र को बचाकर चुपचाप बाहर चला जाता है। भीतर के दरवाज़े से एक मोटी अघेड़ रमणी भारी बनारसी साड़ी पहने, एक ज़रा दुबली रमणी महीन सफेद बेल लगी सफेद धोती पहने, दो युवतियाँ दोनों नीली साड़ियाँ पहने, एक युवक अचकन चूड़ीदार पाजामे में आते हैं। चेहरे से वे सभी थके हुए मालूम होते हैं, पर वे सब बराबर हँस रहे हैं, जैसे जवान लड़कियाँ आपस में हँसती हैं, जब दूसरे का कोई साहसपूर्ण भेद जानती हैं।)

मोटीरमणी : (पास की कुर्सी पर बैठ जाती है, गृहस्वामी उसके बैठ जाने के बाद बैठिये कहता है) हम लोग पार्क में चले गये थे। (हाँफकर) आपका डिनोमाइट भी हमने देखा (सब हँस पड़ते हैं।)

गृहस्वामी : (जबरन हँसी में शामिल होकर) कैसा डिनोमाइट ?

(युवक ने उन लड़कियों को बँठाल दिया है। सफेद धोती वाली भी, जो गृहस्वामिनी है, बैठ जाती है। उसके बैठ जाने पर गृहस्वामी भी बैठ जाता है, सिर्फ युवक खड़ा रहता है।)

मोटीरमणी : आपका डिनोमाइट ! (फिर हँसी होती है।)

गृहस्वामी : (गंभीर होकर) खैर, यह तो मज़ाक है पर यह मैं मानता हूँ। मेरा यकीन है कि दुनिया के सब गोले बारूद

एक आदमी की मर्जी से चाहे वह हजारों मील दूर बैठा हो, फट सकते हैं ।

(अब की वह खुद हँसी शुरू करता है ।)

गृहस्वामिनी : यह योग-बोग बहुत जानते थे अब सब बेचारे भूल गये ।

(फिर हँसी होती है पर पहले से कुछ धीमी)

युवक : पापा का यह खयाल चाहे मजाक हो, पर हिटलर और मुसोलिनी के लिए हमें ऐसी ताकत पैदा करनी होगी ।

गृहस्वामी : (हँसकर) हिटलर और मुसोलिनी ही क्यों—? और ऐसी ताकत मौजूद है, अगर हज़रत आदमी की आलाद बहुत उछल-कूद मचायगी तो वह ताकत काम में लाई जायगी । बेचारा गान्धी क्या कहता है—

युवक : गान्धी तो मठिया गया है ।

(लड़कियाँ आपस में धीमी हँसी हँसती हैं)

मोटीरमणी : मैं तो वह कुछ जानती नहीं । लेकिन हाँ, अभी विक्टोरिया-सि-सी कोई मल्का हो जाय तो सब फिर ठीक हो जाय । दुनिया पर यह तबाही विक्टोरिया के मरने के बाद आई ।

युवक : विक्टोरिया क्या करेगी ?

मोटीरमणी : तुम्हारा तो कहीं पता भी न था तब । विक्टोरिया के ही राज में तो सुख था ।

गृहस्वामी : खैर लड़ाई-भिड़ाई की तो बात छोड़िये । मैं आपको एक किस्सा सुनाता हूँ...

गृहस्वामिनी : क्या हम लोग यहीं बैठे रहेंगे—कहीं घूम आयें !

गृहस्वामी : खाना खाकर चलेंगे, सिनेमा या और कहीं...

युवक : (लड़कियों के पास ही कुर्सी खिसका कर बैठ जाता है ।
बड़ी लड़की उसकी तरफ़ देखकर लाज से सिमट जाती है) हाँ तो आपका वह किस्सा —

गृहस्वामी : वह कुछ नहीं, लखनऊ में जब हिन्दू-मुसलमानों का दंगा हुआ तो हम लोग आगा तुराब के हाते के पास एक वँगले में रहते थे । हम वहाँ तीन हिन्दू थे और तीन ही चार घर मुसलमानों के थे । खैर, हम लोग सब मिलकर उन मुसलमानों के पास गये कि या तो वे लोग हाता छोड़कर मुसलमानों की बस्ती में चले जाँय या हम लोग हिन्दुओं की । जब वहाँ गये तो मालूम हुआ कि वे लोग खुद हम से डरे हुए हैं और लाठियाँ लिये अपना सामान और बीबी-बच्चे लिये जा रहे हैं । हाँ, उसी तरह यूँप में सब एक दूसरे से...

गृहस्वामिनी : बेबी क्या घूमने गया है ?

युवक : (अवाक्-सा) तो हम लोग नौ बजे तक क्या करेंगे ?

(सब अपनी-अपनी घड़ियाँ देखते हैं)

छोटी लड़की : (धीरे से) अब साढ़े सात बजे है ।

गृहस्वामिनी : रिकार्ड सुनाइयेगा ? पर कोई नया रिकार्ड तो हमारे पास है नहीं !

युवक : (ओंठ दबाकर) कोई गाना ही गाये ।

(लड़कियाँ खासकर बड़ी शरनाती-सी हैं)

गृहस्वामी : हाँ, बेटियो गाओ ना !

मोटीरमणी : आप गाइये, इन बेचारियों को क्या आता है ।

गृहस्वामी : ओहो, तो आप ही गाइये !

(सब हँस पड़ते हैं और फिर एक-बारगी सन्नाटा छा जाता है)

मोटीरमणी : (युवक की तरफ देखकर) अब तुम कोई अपना विलायत का किस्सा सुनाओ ।

युवक : (ऊबा-सा) विलायत का किस्सा—आप लोग त्रिज खेलते हैं ?

मोटीरमणी : ये लड़कियाँ खेलती हैं, इनके दादा ने मुझे कितना सिखाया, मुझे आया ही नहीं ।

गृहस्वामी : त्रिज क्या होगा ? आइये.....

गृहस्वामिनी : (एक बारगी उठकर भीतर जाना चाहती हैं ।)

मोटीरमणी : }...कहाँ !!

गृहस्वामिनी :

गृहस्वामिनी : (द्वार के पास रुककर) आप लोगों के लिए कॉफी-ग्रॉफी ही मँगाऊँ ।

मोटीरमणी : कॉफी क्या होगी—बैठिये बानें करें—अभी तो खाना खाना है ।

(सब फिर हँस पड़ते हैं, और घड़ियाँ देखते हैं और सन्नाटा छा जाता है ।)

गृहस्वामी : (युवक से) राजाजी, तुम आज ट्यूटर से बात कर लेना ।

मोटीरमणी : ट्यूटर कौन ?

गृहस्वामी : बेव्री के लिए रखा है, बवाल-ए-जान हुआ जा रहा है ।

गृहस्वामी : (मुस्कराते हुए) वह समझता है कि वह हम लोगों से बहुत ऊँचा है और जो नौकर मालिक का सम्बन्ध हम में है, वह इम कदर हमको छोटा बना देता है कि वह हमारा मुका-

बिला भी नहीं करता । उनका पाक ख्याल है कि वह हम लोगों के साथ एक इन्टेलेक्चुअल एक्मपेरीमेंट कर रहे हैं ।...

(कुछ रामभदारी और कुछ ना-समभी से लोग इस विचित्र आदमी पर खुश हो रहे हैं, केवल युवक गम्भीर है ।)

गृहस्वामी : उन्ही का नहीं, आज सब जवान आदमियों का यह हाल है । वे किताबों के अध-कचरे अमर से बगावत तो करना चाहते हैं, पर नहीं कर सकते, और मैं आपसे पूछता हूँ (एक बारगी युवक की ओर देखकर नज़र हटा लेता है) वह बगावत किसके खिलाफ़ है ? आप नेचर से बैर कर सकते हैं ? नहीं कर सकते ! आप छत पर से गिरेंगे तो दुनिया की कोई ताकत आपका सर फटने से नहीं रोक सकती... (एक बारगी धीमा पड़कर) तुम उन्हें समझा देना...

गृहस्वामी : मुझे आपकी बात पसंद आई कि विक्टोरिया जैमी मल्का कोई हो जाय तो अभी सब ठीक हो जाय, वही बातें फिर लौट आये ।

मोटीरमणी : (गर्व से तनकर) लिखा है 'यथा राजा तथा प्रजा' राजा तो ईश्वर है.....

गृहस्वामी : खैर, मैं तो यह नहीं मानता.....

युवक : (ऊबासा) आइये कुछ खेलें.....

गृहस्वामी : ताश से तो मुझे नफरत है, बिलकुल छिछोरा खेल है ।

गृहस्वामिनी : फिर क्या खेलें, तुम्हीं बताओ !

मोटीरमणी : मैं एक खेल बताती हूँ, हम लोग खेला करते थे—इनके पापा, हम, बीबी जी बर्गरा (सब लोग उनकी तरफ़ गौर से देख रहे हैं) एक आदमी जैसे मैं कुछ चीजों के नाम लूँ, जैसे कमरा—

छोटी लड़की : (चटक आवाज़ में) नहीं, ऐसे नहीं, सब लोग एकाएक कागज़ और पेसिल ले ले और कुछ लोग नहीं। एक आदमी बिना गोचे कई चीजों के नाम ले, जैसे 'कमरा' और सब लोग उस लफ़्ज़ को सुनकर एकदम जो उसके मन में आये अपने कागज़ पर लिख लें, फिर कागज़ पढ़े जायें।

युवक : क्या खेल है—(अपने को सँभाल कर) यह तो अच्छी खासी साइकोलोजीकल रटनी है।

गृहस्वामिनी : (उत्साह से) मैं कागज़ लाती हूँ :

(भीतर जाती है और ज़रा देर में चिट्ठी लिखने का पेंड, दो कलम और कुछ पेन्सिलें लेकर आती है। लड़कियाँ इस बीच में आपस में कुछ घुस-घुसाती हैं। गृहस्वामी निर्विकार बैठा है, केवल युवक अनमना है।)

गृहस्वामिनी : लीजिए।

(युवक पेंड लेकर सबको कागज़ दे देता है। दोनों लड़कियाँ कागज़ लेती हैं और फिर रख देती हैं। मोटीरमणी भी कागज़ ले लेती है पर फौरन कहती हैं।)

मोटीरमणी : मैं—मैं तो नाम लूँगी !

गृहस्वामिनी : (कागज़ लेती हुई) अरे कागज़ ! लाओ बेटी।

[लड़कियाँ झेंपती हुई कागज़ उठा लेती हैं और दो पेन्सिलें ले लेती हैं। युवक अपना फाउण्टेन पेन निकाल कर

गृहस्वामिनी (अपनीमाता) को बे देता है और खाली हाथ खड़ा है ।]

मोटीरमणी तुम भी कागज ले लो, राजाजी ।

युवक मैं तो नाम लूंगा ।

मोटीरमणी (पेंसिल उठाते हुए) अच्छा ।

युवक (सबको तैयार देखकर) अच्छा मैं क्या कहूँ ? (हँसता है)
अच्छा 'कमरा' (सब लिखते हैं)

युवक अच्छा 'बिजली' । (फिर सब लिखते हैं)

युवक अच्छा-अच्छा पेरम्बुलेटर ।' (फिर सब लिखते हैं ।)

युवक अच्छा अब क्या—अच्छा 'सेक्स' ।

गृहस्वामी }
मोटीरमणी } सेक्स ॥

युवक हाँ, हा ।

गृहस्वामी क्यों, सेक्स ।

युवक यह भी लफज है । आपने कहा था बिना सोचे माम लो ।
(सब लिखते हैं)

युवक अच्छा बस ।

(सबसे पहले लड़कियाँ अपने कागज मेज पर रखती हैं ।
सबसे बाद में गृहस्वामी)

मोटीरमणी (कागज उठाती हुई) मैं पढ़ूंगी (कागज उलटती-पलटती है) सबसे पहले मिस्टर सिम्बल का पर्चा है ।

(पर्चा उठाकर, सब गौर से सुन रहे हैं)

मकान, 'जिम्मेदारी', ठीक । बिजली, क्या लिखा है
हाँ —दिमाग-बिलकुल ठीक, दिमाग ने ही तो ऐसी चीजें

निकाली है । पेरम्बूलेटर—‘शादी’, वाह-वाह; मिस्टर सिम्बल ! (गृहस्वामी भद्दा भँपता है) अच्छा, सेक्स—‘साइंस’, बहुत खूब । अब किसका कागज़ है, मिसेज़ सिम्बल का ?

गृहस्वामिनी : मेरा सबसे बाद में पढ़िएगा ।

मोटीरमणी : नहीं, बाद में क्यों ? सभी के तो पढ़े जायेंगे, तो सुनिये ।

गृहस्वामिनी : मेरा बाद में पढ़ियेगा ।

गृहस्वामी : पढ़ने दो न कुसुम !

मोटीरमणी : अच्छा कमरा—‘बाथरूम’ ।

गृहस्वामी : बाथरूम, बाथरूम क्यों ?

युवक : खैर, यह भी तो कमरा है ।

गृहस्वामिनी : अच्छा ।

मोटीरमणी : बिजली, —‘अंधेरा’ ।

गृहस्वामी : है ।

गृहस्वामिनी : बिजली फेल हो जाती है तो मोमबत्तियाँ नहीं ढूँढनी पड़ती है ?

गृहस्वामी : कुसुम, यह क्या है ! बेबी क्या पेरम्बूलेटर पर चढ़ने के काबिल है ? मैं कहे देता हूँ तुम लड़कों का सत्यानाश मारे देती हो ।

गृहस्वामिनी : मैंने तो बेबी लिखा था । अपना बेबी थोड़े ! तुम्ही ने कहा था बिना सोचे ।

मोटीरमणी : अच्छा सेकम,—‘शाहनजफ रोड’ ।

गृहस्वामी : यह क्या है ? आखिर इसका क्या मतलब ?

गृहस्वामिनी : (अपराधिनी-सी) तुमने कहा था बिना सोचे……

गृहस्वामी : तुम्हारा मतलब क्या था ?

गृहस्वामिनी : कुछ नहीं मैंने वैसे ही लिख दिया ।

गृहस्वामी : वैसे ही । सेक्स — 'शाहनजफ रोड' । वाह-वाह !

युवक : पापा यह तो खेल है ! अच्छा अब अगला पढ़िये ।

गृहस्वामी : नहीं, इसे माफ़ हो जाने दीजिये । सेक्स, 'शाहनजफ़ रोड' वाह-वाह ! (उठकर) इसके माने क्या हैं ।

युवक : पापा, यह तो खेल है ।

(मोटी रमणी सब कागज़ रख देती है । लड़कियाँ अपना-अपना कागज़ उठा लेती हैं । युवक व्यग्र-सा बैठ जाता है ।)

युवक : मैं कहता था.....

गृहस्वामी : कमरा — 'ब्राथरूम' सेक्स — 'शाहनजफ़ रोड' । क्या कहना है ।

(सब लोग चुपचाप गंभीर बैठे हैं; केवल युवक कुछ व्यग्र है । पाँच ही मिनट बाद ज़रा-सा परदा खिसका कर भीतर से नौकर कहता है—मेज़ लगाऊँ 'हज़ुर')

गृहस्वामिनी : हाँ-हाँ, (तेज़ी से उठकर भीतर चली जाती है । भीतर से उसकी आवाज़ सुन पड़ती है—बेबी आ गया, नहीं आया अभी ?)

(मोटीरमणी और लड़कियाँ भी उठकर चली जाती हैं । युवक और गृहस्वामी रह जाते हैं । दो मिनट बाद गृहस्वामी भी उठकर भीतर चला जाता है । युवक व्यग्र बरामदे की तरफ़, पर बरामदे के पास ही ट्यूटर मिल जाता है और दोनों कमरे में लौट आते हैं ।)

ट्यूटर : (अपराधी-सा) मैं अपनी डिक्शनरी यहाँ भूल गया था ।

युवक : आप क्या यहीं बैठे थे ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : यहीं बरामदे में ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : हूँ, (टहलता है । ट्यूटर अपनी सब जगहों में किताब खोजता है ।)

युवक : आज पापा से आपकी बातचीत हुई ?

ट्यूटर : जी हाँ ।

युवक : क्या बातचीत हुई ।

ट्यूटर : कुछ नहीं— उन्होंने कहा कि आने वाली जेनेरेशन चाहे बिल्लियों की हो या साँपों की—पर हमसे अच्छी होगी ।

युवक : (चौंक कर और ट्यूटर के पास आकर) किसने कहा ?

ट्यूटर : मिस्टर सिब्बल ने—

(युवक कुछ देर टहलता रहता है और फिर भीतर चला जाता है । स्टेज पर ट्यूटर रह जाता है और वह कुर्सी पर बैठकर एक अधजला सिगरेट निकाल कर सुलगाता है ।)



खिड़की की राह

श्री जगदीशचंद्र माथुर

पात्र
दिलीप
चन्द्र
प्रवीण
उर्मिला

[कमरे की दीवारें आसमानी रंग की हैं और उसमें पर्दे, पलंग-पोश, मेजपोश, कुर्सियों की गद्दियाँ भी लगभग उसी रंग से मेल खाती हैं। सामने वाली दीवार में दाहिनी ओर एक चौड़ी और नीची खिड़की है, जिसके नीचे एक छोटा स्टूल है ! बायें कोने में एक लकड़ी के फ्रेम वाला पर्दा इस तरह रखा है कि उसकी आड़ में कपड़े वगैरह बदलने का प्रबन्ध है। पर्दे और खिड़की के बीच में एक फ़ैशनेबल पलंग है, जिस पर एक सुन्दर पलंगपोश बिछा है ! एक वाड्रॉब के ढंग की आलमारी भी है और इधर-उधर कुछ कुर्सियाँ और छोटी मेजें हैं, फूलदान भी है। बायीं तरफ बाथरूम में जाने का रास्ता है और दाहिनी तरफ बाहर के कमरे में जाने का। पर्दा उठने पर कमरे में बहुत हलका प्रकाश जान पड़ता है क्योंकि बिजली बन्द है और खिड़की में से ही बरामदे के बल्ब की रोशनी आ रही है। बल्ब और बरामदे के खम्भे का अंश खिड़की में दिख पड़ता है जिससे मालूम होता है कि खिड़की के पीछे बरामदा है। कमरे में कोई नहीं है। बाथरूम की ओर कुत्ते के जोर-जोर से भूँकने की फिर कुछ टकराने की आवाज आती है। कुछ देर बाद बड़हवासी की हालत में दिलीप का प्रवेश। चुस्त पाजामा, बन्द गले का कोट, जिसके बटन ऊपर से खुले हुए हैं। हाथ में बायलिन का केस]

दिलीप : मैं कहता हूँ जनाब कि अगर आपको एक आर्टिस्ट को बुलाना था तो बाहर कुत्ता क्यों रखा और वह भी इतना खूंखार ! (चारों तरफ़ देखकर) अरे यहाँ तो कुछ भी नहीं...यह कैसी दावत है ? प्रिंसिपल साहब ने कहाँ फाँस दिया ? (पलंग पर बैठता हुआ) जब कुत्ता ऐसा है तो मालिक कैसे होंगे !

[दाहिनी ओर से चन्दू का प्रवेश । पोशाक बेरा की, यानी पाजामा, अचकन, कमरबन्ध और पगड़ी कंधों पर भाड़न । आते ही स्विच दबाते समय दिलीप की ओर पीठ करके खड़ा होता है तभी दिलीप खलारता है और चन्दू चौंक कर घूमता है ।]

चन्दू : कौन ?

(घूमकर देखता है ।)

दिलीप : (पलंग पर से उठता हुआ) मैं ही हूँ !—मैं !

चन्दू : लेकिन...लेकिन आपको मैंने पहले इस घर में नहीं देखा । आप...

(दिलीप बात काट देता है और बराबर ऐसा करता है ।)

दिलीप : तुम इस घर के नौकर हो न ?

चन्दू : जी बेरा हूँ !.....लेकिन आप... ..

दिलीप : आज यहाँ छोटी-सी दावत है न ?

चन्दू : जी दावत है तो ! लेकिन आपको.....

दिलीप : तो कहाँ है वह दावत ?

चन्दू : गोल कमरे में । यह तो पलंग-कमरा है ।...लेकिन...लेकिन आप हैं कौन, आपका नाम, आपका.....

दिलीप : वाह भई ! तुम्हारे मालिक का खूँखार कुत्ता भी नाम पूछता है और तुम भी ! उससे बचकर तो पलंग-कमरे में घुसा पर तुमसे बचना मुश्किल है ।

चन्दू : लेकिन यह तो बताइए कि आप कौन.....

दिलीप : उफ़ ! तुमने तो नाक में दम कर दिया !...देखते हो यह वायलिन ?

चन्दू : बाजा ?

दिलीप : हाँ बाजा !.....मुनो दोस्त मैं बाजा बजाता हूँ, तुम हाजिरी बजाते हो !...हम तुम दोनों आर्टिस्ट हैं ।...मिलाओ हाथ इसी बात पर ।

(चन्दू का हाथ पकड़ कर हिलाता है ।)

नेपथ्य से : बेरा, बेरा !

चन्दू : गजब हो गया ! अरे हाथ छोड़िए ! साहब आवेंगे तो कहेंगे, अपने यारों को वेडरूम में बुलाता हूँ !

दिलीप : तो मुझे गोल कमरे में पहुँचाओ न !

नेपथ्य से : बेयरा, बेयरा !

(किसी के आने की पद-चाप)

चन्दू : आया हज़ूर !...अच्छा चलिए इधर से !

दिलीप : खिड़की में से ? यह भी ठीक ! (खिड़की की तरफ़ बढ़ता हुआ) जानते हो दोस्त, समाज किसके काबू में आता है ?

(खिड़की के उस पार कूद जाता है ।)

चन्दू : (वायलिन केस पकड़ाते हुए) यह लीजिए अपना बाजा !

दिलीप ; (भौंकता हुआ) समाज उसके आगे झुकता है जो खिड़की की राह कूदकर उसे दबा सके । जिसने दरवाज़ा पकड़ा, वह तो उसका गुलाम है, गुलाम ! समझे ?

(गायब हो जाता है ।)

चन्द्रू : अजब आदमी है !

[खिड़की बन्द करता है । प्रवीण का प्रवेश । सूट पहने है, शबल सूरत में भध्य, बातचीत करते समय दोनों हाथ मलने की आदत है ।]

प्रवीण : कौन अजीब आदमी है जी बेयरा ?.. आओ उर्मिला, तुम्हारी मुलाकात इस घर के स्तम्भ से कराऊँ !

(उर्मिला का प्रवेश . सुन्दर, इकहरा, प्रपुल्ल बदन)

— : यह है मेरा बेयरा !

चन्द्रू : सलाम हुजूर !

उर्मिला : सलाम !

प्रवीण : काम अच्छा करता है और उम्मीद है आगे भी करेगा !

उर्मिला : ए बैचलरस बियरर ! (दोनों हँसते हैं) क्या नाम तुम्हारा ?

चन्द्रू : चन्द्रू !

प्रवीण : अच्छा, चन्द्रू ! गोल कमरे में जाकर देखो, अगर कोई बाबू म्यूजिक कार्लिज से आये हों तो उनसे कहना कि मेहमानों के आते ही कुछ चीज शुरू कर दें ।

चन्द्रू : (प्रश्न सूचक मुद्रा) चीज शुरू कर दे ?

प्रवीण : हाँ, गाना-बजाना शुरू कर दें !

चन्द्रू : बजाना !...बाजा !...बाजा...तो...वह...बाबू...

प्रवीण : हाँ, और देखो खाने की मेज को ठीक वैसे तैयार कर दो जैसे मैंने बताया है । समझे ?

चन्द्रू : हुजूर !

(प्रस्थान)

उर्मिला : देखती हूँ बड़ी तैयारियाँ है। मैंने तो समझा था मुझे ही डिनर पर बुलाया है !

प्रवीण : उर्मिला यह डिनर ही नहीं, 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' भी है।

उर्मिला : न बाबा ! कालेज की इन्ट्रोडक्शन नाइट मुझे अब भी याद है !

प्रवीण : वह नहीं ! तुम्हें इस शहर में आये एक ही हफ्ता हुआ है ! सोचा तुम्हें आज अपने दोस्तों से ही मिला दूँ !

उर्मिला : मुझे पहले से बता दिया होता तो.....

प्रवीण : तो क्या ?

उर्मिला : साड़ी तो बदल आती !

प्रवीण : उसके लिए सब इन्तजाम है ! यह देखो उर्मिला !

[आलमारी खोलकर एक केस निकालता है, उसे खोलकर एक कीमती साड़ी दिखाता है।]

उर्मिला : ओ ! हाऊ लवली !!

प्रवीण : और यह पेटिकोट और ब्लाउज और ब्रेसिया !

उर्मिला : प्रवीण तुम बड़े नटखट हो !

प्रवीण : तुम तो जानती ही हो कि मेरा कोई काम अधूरा नहीं होता। देखो यह नेकलेस इस साड़ी के साथ कैसी जायगी ?

(नेकलेस निकालता है ।)

उर्मिला : यह सब मेरे लिए ?

प्रवीण : यह भी तो.....

उर्मिला : पाउडर बॉक्स ! और हर एक चीज मेरे मनचाहे रंग की !!

प्रवीण : रंग ? तुमने बैठक के पर्दे और सोफा सेट पर गौर किया ?

उर्मिला : हाँ, सभी गुलाबी रंग के हैं। और देखती हूँ कि इस बेडरूम में आसमानी की ही बहार है ! प्रवीण, मुझे न मालूम था तुम्हारे अन्दर कलाकार भी मौजूद है !

प्रवीण : जब मेरी प्रियतमा आर्टिस्ट हो तो मैं इतना भी न कहूँ ? देखो, दीवारों पर मैंने इतनी सब जगह छोड़ दी है तुम्हारी पेंटिंग्स के लिए ! सोच लो कहाँ कौन सी तस्वीर टँगेगी ।

उर्मिला : जान पड़ता है शीघ्र ही तुम्हारी भी पेंटिंग्स यहाँ टँगेगी !

प्रवीण : मैं और पेंटिंग ! (हँसता है) लेकिन उर्मिला एक तरह से तुम्हारा कहना ठीक है ! मैं भी आर्टिस्ट हूँ...दी आर्टिस्ट इन लाइव (खिड़की के सहारे खड़ा होता है और तैयार किये हुए भाषण के ढंग से बोलता है) संगतराश की तरह मैं नाप-जोखकर, चुन-चुनकर अपने जीवन का डिजाइन तैयार करता हूँ, मेरा हर एक दिन जौहरी की माला की लड़ियों की तरह है, साफ सुथरा ; मैं माली की तरह अपने चारों ओर फूल-पौधों को तराश कर, सँवार कर, रखना पसन्द करता हूँ...मैं ..

उर्मिला : उफ्फोह, आज तुम बोली भी अनोखी बोल रहे हो ! संगतराश, जौहरी, माली !! (हँसती है) जान पड़ता है यह मेरी भी इन्ट्रोडक्शन नाइट है और तुम्हारी भी !

प्रवीण : (बही स्वर) शायद तुम ठीक कह रही हो, उर्मिला ! अभी तक शायद मैं तुम्हारे लिए कुछ पहेला-सी बना रहा था ! लेकिन.....

उर्मिला : हम दोनों बराबर एक दूसरे के लिए पहेली-सी बने रहें और रोज नयी पहेलियाँ सुलभाते रहें, इसी में तो आकर्षण है !

प्रवीण : शादी के बाद भी, उर्मिला ?

उर्मिला : तभी तो हमारा विवाहित जीवन हरा-भरा और सरस रहेगा !

प्रवीण : हूँ ! (रुक जाता है) लेकिन शादी के पहले एक दूसरे को समझ लेना भी ठीक ही है !

उर्मिला : जिस दिन समुद्र के किनारे हम दोनों ने एक दूसरे का हाथ पकड़ा, उसी दिन हम एक दूसरे को समझ गये थे न ?

प्रवीण : उर्मिला, जिस तरह मैं तुम्हारा अनन्य प्रेमी रहा हूँ, वैसे ही मैं एक आदर्श पति बनना चाहता हूँ !

उर्मिला : कैसे तुम्हें बताऊँ कि मैं अपने को कितनी भाग्यवती समझती हूँ ?

प्रवीण : बीसियों किताबों में पढ़ चुका हूँ कि पति की स्वार्थपरता और नासमझी के कारण वैवाहिक जीवन अग्रह्य हो जाता है। छोटी-छोटी बातों की विषमता मांरे दाम्पत्य-जीवन को विषमय बना देती है ! सो मैं वैना अवसर ही न आने दूंगा उर्मिला !

उर्मिला : यदि ऐसे अवसर आयेंगे, तो भी हम लोगों को कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती !

प्रवीण : बचपन से ही मैंने यह सबक सीखा कि जो समाज के ढाँच में अपने को ढाल सके सफलता उसी की है ! समाज फूल है तो कुटुम्ब फल ! पति और पत्नी के उत्तरदायित्व के लिए मैंने अपने को ट्रेन्ड किया है !

उर्मिला : (कुछ मुस्कराकर) सुनूँ तो कौन सी वह सुन्दरी थी जिससे तुम्हें ट्रेनिंग मिली ?

(हँसती है।)

प्रवीण : मज़ाक न करो उर्मिला ! जब कभी मैं जीवन के आदर्श की सतह पर से बातें करता हूँ । तब मज़ाक मुझे आँख की किर-किरी-सा लगता है !

उर्मिला : साँरी प्रवीण, बेरी साँरी !

प्रवीण : लेकिन इस बहाने मुझे एक महत्वपूर्ण बात कहने का मौका मिला । दाम्पत्य जीवन की सब से बड़ी जिम्मेवारी यही है कि पति अपने प्रति पत्नी का विश्वास कायम रख सके ! मैं तुम्हें कभी शिकायत का मौका न दूँगा उर्मिला !

[बाहर से वायलिन पर अत्यन्त सुन्दर, बहार रागिनी की ध्वनि]

उर्मिला : यह बाहर से वायलिन की आवाज़ कैसे आ रही है ?

प्रवीण : मैंने सोचा, पार्टी में कुछ संगीत भी रहे । सो, म्यूज़िक कालिज के प्रिंसिपल से एक आदमी को भेजने के लिए कह दिया था । वही होगा । (खिड़की खोलता है । स्पष्ट और सुमधुर बहार रागिनी का स्वर) जान पड़ता है सब लोग आ गये !

उर्मिला : बड़ा सुन्दर वायलिन बजा रहा है !

प्रवीण : तुम्हें क्लासिकल संगीत पसन्द है न ? मैं तो उसका सिर-पैर कुछ जानता नहीं हूँ, लेकिन तुम्हारे लिए तरह-तरह के रिकार्ड मंगा कर रख रहा हूँ .. फैयाज़ खाँ, हीराबाई बड़ोद-कर, रविशंकर वगैरह, वगैरह !

उर्मिला : प्रवीण मुझे कभी-कभी लगता है.....

प्रवीण : क्या ?

उर्मिला : लगता है कि क्या मैं तुम्हारे योग्य भी हूँ !

प्रवीण : योग्य.....

[वायलिन बन्द हो जाता है और कुछ खटपट की आवाज आती है ।]

— : है ! यह वायलिन एक साथ बन्द कैसे हो गया ? और यह आवाज ! कुछ गड़बड़ जान पड़ता है ! चलूँ देखूँ !

उर्मिला : मैं भी चलूँ ?

प्रवीण : ऐसे नहीं, इस कोने में जो पर्दा है न, उसके पीछे जाकर यह नयी साड़ी और जेवर पहन लो । तभी अपने दोस्तों से तुम्हारा परिचय कराऊँगा ।

(बैठक से भगदड़ की आवाज आती है ।)

— : देखूँ, क्या मामला है !

[प्रवीण का प्रस्थान । उर्मिला कुछ पसोपेश में कुछ साँची-सी साड़ी, ब्लाउज, जेवर उठाकर देखती है । फिर पर्दों के पीछे चली जाती है । थोड़ी देर बाद बरामदे में कुछ हलचल और फिर खिड़की में से दिलीप कुछ परेशानी में भाँकता नजर पड़ता है । देखता है कि कमरे में कोई है तो नहीं । फिर कूदकर अन्दर आ जाता है और खिड़की बन्द कर लेता है । फिर दाहिना दरवाजा बन्द कर सिट-किनी लगा देता है ।]

दिलीप : (दबे स्वर में) बस अब इधर बाथरूम की तरफ से रफू-चक्कर हो जाता हूँ ।

[बाथरूम की ओर बढ़ता है, ज्योंही पर्दों के बराबर से निकलता है एक साड़ी उसके ऊपर आ पड़ती है ।]

दिलीप : ऐं साड़ी ! (ब्लाउज आ पड़ता है) यह क्या, ब्लाउज ? हे परमात्मा ! अब खैर नहीं ! देखूँ, इस पर्दे के पीछे कौन है ।

[पर्दा थोड़ा हटाकर भाँकता है । उर्मिला चीखती है ।
पोछे हट जाता है ।]

दिलीप : आई बेग योर पार्डन ! क्षमा कीजिए देवीजी !

[सकपका कर बाथरूम की तरफ़ जाता-जाता रुक जाता
है । उर्मिला थोड़ी देर में गुस्से में बाहर आती है ।]

उर्मिला : आप आदमी हैं या हैवान ? देखते नहीं है कि एक महिला
कपड़े बदल रही है और आप अन्दर घुसे चले आ रहे हैं ?

दिलीप : माफ़ कीजिएगा, मैंने समझा कि यह बेचलर का कमरा है !

उर्मिला : आखिर आप हैं कौन ?

दिलीप : अगर मैं पूछूँ कि आप कौन है तो गुस्ताखी तो नहीं होगी ?

उर्मिला : (अनसुनी-सी) जी ?

दिलीप : बात यह है कि मैंने सुन रखा था कि इस घर के मालिक
कुंआरे हैं ! मुमकिन है मैंने ग़लत सुना हो !

उर्मिला : (अवहेलना मरे स्वर में) जी ! (दरवाज़े के करीब जाकर
धक्का लगाती हुई) यह दरवाज़ा आपने बन्द किया है ?

दिलीप : जी ! उसे खोलिए मत ! (फिर उनी स्वर में) तो आप
लोगों का गंधर्व-विवाह.....

उर्मिला : (सरोष) जी नहीं ! न हमारा विवाह हुआ है, न गंधर्व
विवाह ! आपसे मतलब ?

दिलीप : ठीक !

(गहरी साँस लेता है ।)

उर्मिला : इसके क्या मानी ?

दिलीप : यही कि अब मुझे इतमीनान है !

उर्मिला : आपका इतमीनान तो अभी ठिकाने किये देती हूँ !

(खिड़की की ओर जाकर) यह खिड़की भी आपने ही बन्द की है ?

(खोलने का प्रयत्न करती है ।)

दिलीप : हैं, हैं, उसे न खोलिए !

उर्मिला : खिड़की को भी न खोलूँ, दरवाजे को भी न खोलूँ, (रुककर) क्यों ?

दिलीप : इसलिए कि जहाँ आपने इन्हें खोला, वहाँ मैं बाथरूम की राह से रफू चक्कर हुआ ! और मेरे यहाँ से चले जाने से आपका मतलब पूरा नहीं होगा !

उर्मिला : मेरा मतलब ?

दिलीप : आपका तो मतलब यही है न कि मुझे मि०—क्या नाम उनका—मि०—

उर्मिला : प्रवीण चन्द्र !

दिलीप : जी, मुझे मि० प्रवीण चन्द्र के हवाले कर दें, यही न ?

उर्मिला : जितनी देर से आप बातों में उलझे हैं, उतनी देर में आप यहाँ से भाग सकते थे !

दिलीप : आपकी शंका ठीक है ! (बैठता हुआ) मगर असल बात यह है कि मैं यहाँ से जाना नहीं चाहता !

उर्मिला : हूँ ! इसके बाद आप कहेंगे कि आप मुझ से प्रेम करते हैं !.....

दिलीप : इतनी जल्दी नहीं मिस..... .

उर्मिला : उर्मिला !

दिलीप : जी ! मिस उर्मिला इतनी जल्दी नहीं । मुझे थोड़ा वक्त तो दीजिए !

उर्मिला : आप न सिर्फ बदतमीज है, बल्कि अपने आपको कुछ समझते भी हैं !

दिलीप : यदि आपने भी मेरी तरह एक-एक करके चार मूर्खों के मुँह पर तड़ातड़ चार चपत लगाये होते तो आप भी अपने आपको कुछ समझती !

उर्मिला : चार मूर्ख कौन ?

दिलीप : आपके मि० प्रवीण चन्द्र के चार दोस्त, जो उनकी बैठक में विराजमान थे !

उर्मिला : (आश्चर्य से) आपने उनको चपत लगाये ?.....आप है कौन मि०—

दिलीप : मिस्टर दिलीप कुमार ! सुनिए मिस...उर्मिला (रुककर लाचारी के स्वर में) लेकिन क्या फायदा ? कही आपके भी कान उन्हीं लोगों की तरह संगीत के लिए बहरे हुए .. कहीं.....

उर्मिला : संगीत !...तो क्या आप ही थोड़ी देर हुए वायलिन पर बहार बजा रहे थे ?

दिलीप : (आवेशपूर्ण उत्साह से उर्मिला का हाथ पकड़कर मानो उससे पहली जान पहचान हो) वायलिन पर बहार !... सच ? तो क्या सच आप राग-रागनियाँ समझती है ? उफ़ोह ! आपने अब तक बताया क्यों नहीं ?

उर्मिला : (हाथ छुड़ाते हुए) अगर बता देनी तो आप क्या करते ?

दिलीप : क्या करता ? कह नहीं सकता ! शायद अपनी अधूरी रागिनी को पूरी करता ! सच कहता हूँ मिस उर्मिला, उस रागिनी को तोड़ते हुए मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े हो रहा था ! लेकिन मजबूरी ! मैं तो बहार की मौजों में बहा जा रहा था, सर्मा

बँधने वाला था, पर वे चार अहमक बातें किये जा रहे थे, लगातार वे ही छिछली ओछी बातें, वही बेहूदेपन की हँसी ! और मुझसे कला की यह बेकदरी देखी न गई ! वायलिन एक तरफ़ रखकर उन लोगों के पास गया और बिना कुछ पूछे और कहे, मैंने चार तमाचे चारों के मोटे-मोटे गालों पर रसीद किये ! कहिए ठीक किया न ?

उर्मिला : (हँसी दबाते हुए) ताज्जुब है कि उन लोगों ने आपको घेर कर वहीं आपकी खबर नहीं ली !

दिलीप : जब तक कि वे सम्हलें, मैं चम्पत हो चुका था ! वे मेरे पीछे बाहर की ओर भागे और मैं उन्हें चकमा देकर चला आया इधर, इस इरादे से कि पिछवाड़े से रफूचक्कर हो जाऊँगा ! लेकिन आपने तो मेरा प्रोग्राम ही ढेर कर दिया !

[पलंग पर रखी हुई एक पुस्तक उठा लेता है और उसके पन्ने उलटने लगता है । क्षणिक मौन जिसमें उर्मिला अनायास दिलीप की ओर पल भर की ईषत् मुस्कानपूर्ण दृष्टिपात करती है । लेकिन तुरन्त ही सम्हल कर, जैसे कुछ याद आया हो—]

उर्मिला : अच्छा, तो अब आप जा सकते हैं, क्योंकि मुझे लगता है कि वे इधर ही आ रहे हैं और तब मुझे दरवाजा खोलना ही होगा !

दिलीप : वे ?

उर्मिला : मि० प्रवीण चन्द्र !

दिलीप : मि० प्रवीण चन्द्र ! ओह ! मिस उर्मिला, जिस व्यक्ति के दोस्त ऐसे वहशी हैं कि उनके सामने एक मधुर और कलापूर्ण रागिनी बजे और वे सुनना तो अलग, चुप भी न रहें, मेढ़कों की भाँति टर्र...टर्र करते रहें...ऐसे व्यक्ति के साथ आपको अकेला छोड़ दूँ ? नामुमकिन !.. ऐसे व्यक्ति की तो छाया

भर आपके कलाप्रिय हृदय की पंखुड़ियों को कुम्हला देगी,
टुकड़े-टुकड़े कर देगी !

उर्मिला : मि० दिलीप कुमार, शायद आप नहीं जानते कि मि० प्रवीण
चन्द्र से शीघ्र ही मेरी शादी होने वाली है ।

दिलीप : शादी ! आपकी, (रुकता है, फिर उर्मिला की ओर देखता
है । मानो उस दृष्टि में उसे किसी नूतन रहस्य का आभास
मिला हो, ऐसी मुस्कराहट के साथ) हाँ, यदि आपकी उनके
साथ शीघ्र ही शादी होने वाली है तब तो मेरा और आपका
अकेले बन्द कमरे में उनके द्वारा पाया जाना शायद ठीक न
होगा !...अच्छा तो मैं चलता हूँ—

उर्मिला : (सहसा मानो आप्रह के साथ) ...आ...आप...—मच ही
जा रहे हैं ?

दिलीप : जी ! नमस्ते !

उर्मिला : (कुछ रुक कर) नमस्ते !

[दिलीप का बाथरूम की ओर से प्रस्थान । उर्मिला
उसको जाते हुए देखती है और जब उसकी पीठ मुड़ जाती
है तब मानो उसको रोकने के लिए इशारा-सा करती है,
मगर हाथ उठा ही रह जाता है ! कुछ देर तक ध्यान मग्न !
फिर उठती है और खिड़की खोलती है ! इसी समय बाईं
ओर से दिलीप का पुनः प्रवेश]

दिलीप : मिस उर्मिला !

उर्मिला : (सिर घुमा कर) आप फिर आ गये ?

दिलीप : देखिए, एक तो इसी तरफ़ प्रवीण बाबू का खूबार कुत्ता
घूम रहा है ! दूसरे, जब मेरी जान से भी प्यारी वस्तु यहाँ
रह गई तो जाना फ़िजूल था !

उर्मिला : (सस्मित) मुनू तो कौन है आपकी सबसे प्यारी वस्तु ?...

दिलीप : (बनावटी हिचकिचाहट से) मेरा मतलब...मेरा मतलब तो...मेरा मतलब तो महज ..महज अपने वायलिन से था !

उर्मिला : (निराश स्वर) ओ !

दिलीप : भला मिस उर्मिला, एक म्यूज़िशियन अपने साज को ब्रेकदरों के घर में कैमे छोड़कर जा सकता है ?

(बाहर से कोई दरवाजे पर दस्तक देता है ।)

उर्मिला : (चिन्तित स्वर) आपका वायलिन आपको भी ले डूवेगा और मुझे भी ! मुनिण, प्रवीण बाबू आ गये !

दिलीप : आप दरवाजा खोल दीजिए ; मैं जा रहा हूँ !...

(जाते-जाते रुक जाता है) लेकिन एक बात है !

उर्मिला : जल्दी कीजिए ! !

दिलीप : थोड़ी देर के लिए इस पर्दे के पीछे खड़े होकर जरा प्रवीण बाबू की आवाज़ तो सुन लूँ । फिर उधर ही मे वाथरूम के रास्ते मे बाहर हो जाऊँगा ? आपको कोई एतराज तो न होगा !

उर्मिला : आप कायर भी हैं !

(फिर दस्तक “उर्मिला, उर्मिला !”)

दिलीप : (हँसता हुआ) यह तो बाद में पता चलेगा कि कौन कायर है (पलंग वाली पुस्तक हाथ में लेकर उसी पर्दे के पीछे चला जाता है, जिसके पीछे उर्मिला ने कपड़े बदले थे ।

उर्मिला : खूब !

(प्रवीण का प्रवेश)

प्रवीण : उर्मिला, मुझे क्षमा करो ! मैं बहुत शर्मिदा हूँ कि इतनी देर तक तुम्हें अकेला छोड़कर मकान के बाहर चला गया ! क्या कहूँ अजब गड़बड़भाले से पड़ गया !

उर्मिला : मैंने तो समझा कि कालिज की ही तरह यहाँ भी 'इन्ट्रोडक्शन नाइट' होने वाली है !

प्रवीण : अरे, भई, एक पागल की हरकतों ने मेरा सारा प्रोग्राम चौपट कर दिया !

उर्मिला : पागल ?

(पदों की तरफ देखती है ।)

प्रवीण : हाँ, म्यूजिक कालेज के प्रिन्सिपल ने न जाने किस हैवान को वायलिन बजाने के लिए भेज दिया था ! मैंने तो अब तक उसकी शक्ल भी नहीं देखी !

उर्मिला : वायलिन तो अच्छा बजा रहा था !

प्रवीण : लेकिन उस जाहिल को क्या हक था कि मेरे चारों दोस्तों के मुँह पर तमाचे लगाकर चलता बने ? उर्मिला, मेरे चारों दोस्त नाराज होकर चले गये ! मैं उस कम्बख्त के पीछे-पीछे भागा, लेकिन वह ऐसा गायब हुआ कि दूर तक नामोनिशान भी नहीं !

उर्मिला : जब आपने उसकी शक्ल ही नहीं देखी तो हूँद कैसे पाते ?

प्रवीण : उर्मिला, मैं उस वक्त बहुत परेशान था (ऊँचे स्वर में) बेरा...बेरा...

चन्द्रू : (नेपथ्य से) आया हुआ !

(बेरा का प्रवेश)

प्रवीण : कुछ पता लगा ?

चन्द्रू : नहीं हुआ ! बहुत तेज भागा मालूम देता है ! लेकिन अपना बाजा छोड़ गया है, ले आऊँ ?

प्रवीण : अबे अहमक, मैं बाजे को क्या करूँगा, गधा ! (गुस्से पर

लगाम लगाता हुआ उर्मिला से) मुझे माफ करो, मैं इस वक्त आपसे नहीं हूँ उर्मिला !

उर्मिला : कुछ दवा ले लो...एसप्रिन वर्गैरह !

प्रवीणा : दवा से ज्यादा मुझे मानसिक दवा की जरूरत है ! (पलंग पर कुछ खोजता है) बेरा, वह किताब कहाँ गई ?

चन्द्रू वही जो आप रोज सवेरे पढ़ते हैं ? यही रखी हुई थी हुजूर !

(पलंग पर खोजता है।)

प्रवीणा : देखो उधर पदों के पीछे तो नहीं पड़ी हुई है ?

[चन्द्रू पदों की ओर बढ़ता है। उर्मिला भट से उसे मना करती हुई बोलती है]

उर्मिला : नहीं, नहीं, किताब वहाँ नहीं है।

(चन्द्रू रुककर उसकी ओर देखता है।)

प्रवीणा : तो क्या तुमने वह किताब देखी है ?

उर्मिला : हाँ हाँ.. वही न ? यही पड़ी हुई थी। ए...ए...क्या नाम है उसका...?

[सहसा पदों के पीछे से विलीप निकलता है, हाथ में पुस्तक लिए हुए। चेहरे पर मुस्कराहट]

विलीप : पुस्तक का नाम है, (सफल जीवन की कुंजी)। माफ कीजिएगा, जनाब, आपकी यह गीता मैंने आपके पलंग पर से उठा ली थी...बड़ी लाजवाब चीज है ! आप शायद उसके तीसरे अध्याय का ख्याल कर रहे हैं?...लीजिए आपके काम की चीज पढ़कर सुनाये देता हूँ। (पढ़ता है) 'विवाहित जीवन में पुरुष को अपने मिजाज पर काबू रखना बहुत जरूरी है क्योंकि परेशान मिजाज वाला पुरुष अपनी

स्त्री को न तो सन्तुष्ट कर पाता है और न उस पर ठीक तौर पर काबू रख सकता है। जैसा हम पहले कह आये हैं, विवाहित जीवन भी एक कला है। पुरुष को सगतराश की तरह नाप-जोखकर, चुन-चुन कर अपने जीवन का डिजाइन तैयार करना है, उसका हर एक दिन जौहरी की माला की लड़ियों की तरह है, माली की तरह उसे अपने...'

चन्दू : (जो अब तक सकपका कर सब कुछ देख मुन रहा था) अरे हुजूर, यह तो वही आदमी है !

उर्मिला : अरे,...ठीक यही शब्द तो प्रवीण बाबू ने मेरे सामने आज कहे थे !

अरे हुजूर, यह तो वही आदमी है !

प्रवीण : कौन ?

दिलीप : ठहरो, दोस्त, मैं खुद ही बताये देता हूँ ! बात यह है प्रवीण बाबू कि मैं और आपका नौकर पुराने दोस्त है, फेलो आर्टिस्ट्स !

प्रवीण : तो यह किताब तुम्हारे हाथ में कहाँ से आई ? तुम...तुम आये कहाँ से ? उर्मिला, तुम्हें मालूम है ?

चन्दू : अरे, हुजूर, यही तो वह बाजे वाला है।

प्रवीण : बाजे वाला ?

दिलीप : (चन्दू से) उफ्फोह, दोस्त ! तुमने तो सारा मजा ही किर-किरा कर दिया ! मैं तो वही बात बताने वाला था, लेकिन जरा तकल्लुफ के साथ, जरा कलापूर्ण ढंग से ! (प्रवीण बाबू से) प्रवीण बाबू, मैं ही आज रात का हीरो हूँ। मैंने ही आपके दोस्तों के मोटे-मोटे गालों पर चार भरपूर तमाचे लगाये हैं और मुझे खुशी है कि इस तरह मैंने जहालत के खिलाफ खूबसूरती की ओर से बगावत का झंडा उठाया !

क्यों, ठीक है न मिस उर्मिला ? आप तो पहले से ही मेरी बात को मानती है !

प्रवीण : पहले से ? तो क्या तुम इस शख्स को पहले से जानती थी उर्मिला ?

उर्मिला : (कुछ रुककर) हाँ, मैं इस शख्स को बहुत पहले से जानती हूँ, इतना पहले से कि यह भी याद नहीं पड़ता कि कब मैं इन्हे नहीं जानती थी !

दिलीप : (विस्मित) ऐ ?

उर्मिला : (दिलीप की ओर विजय भाव से देखती हुई) जी !

[प्रवीण इस आघात से मानो आहत हो निश्चब्द हो जाता है । थोड़ी देर के लिए सब लोग चुप हैं । फिर इस अस्वाभाविक शान्ति को तोड़ता हुआ चन्दू खलारता है ।]

चन्दू : हुजूर, इनका बाजा ले आऊँ ?

प्रवीण : (मानो जागा हो) ऐ, बाजा ! हाँ, इनका वायलिन ले आओ । (चन्दू जाता है) उर्मिला, क्या मैं एक सवाल तुमसे पूछ सकता हूँ ? (उर्मिला चुप) एक ऐसे विचित्र व्यक्ति से इतनी पुरानी जान-पहचान होने पर भी तुमने मुझसे इनका अब तक जिक्र भी करना मुनासिब नहीं समझा ! सो क्यों ?

उर्मिला : अगर मैं तुम्हे यह बता भी देती तो क्या इससे तुम्हारे निश्चय में कोई अन्तर हो जाता ?

दिलीप : सवाल यह नहीं है उर्मिला देवी ! सवाल यह है कि इस किताब—“सफल जीवन की कुजी”...के पाँचवे अध्याय में लिखा है कि (पढ़ते हुए) पुरुष और स्त्री को एक दूसरे से कोई भेद नहीं छिपाना चाहिए ।” जब आप लोगों की

एक दूसरे से शादी होने वाली है तो प्रवीण बाबू आपसे यह कैसे उम्मीद कर सकते थे कि आप उनसे इस लम्बी... इतनी लम्बी जान-पहचान का जिक्र ही न करेंगी ? क्यों प्रवीण बाबू मैंने आपकी बात को ठीक समझा न ?

उर्मिला : (कृत्रिम झुंझलाहट से) जी, आप इनकी बात भी ठीक तरह से समझते हैं और मेरी भी ! यानी आप खूब हैं !

दिलीप : हँ, हँ, हँ ! उर्मिला देवी, आप तो जानती ही हैं कि स्त्री और पुरुष के जीवन को समझना मेरा एक तरह से पेशा हो गया है ! खास तौर से स्त्रियों को तो सिर से पैर तक समझे हुए हूँ !

प्रवीण : सिर से पैर तक ?

दिलीप : जी हाँ, दिल तक ही नहीं बल्कि.....

उर्मिला : आखिर आपकी मंशा क्या है ?

दिलीप : मेरी मंशा ? अगर आप पूछती हैं तो उत्तर देना मुश्किल है, लेकिन अगर प्रवीण बाबू पूछते हैं तो मेरी मंशा है, अपना वायलिन लेकर मैं रवाना हो जाऊँ । अच्छा तो प्रवीण बाबू, बाहर से वायलिन लेकर मैं चलता हूँ ।

(चलने को उद्यत)

प्रवीण : ठहरिए, अभी ठहरिए, और थोड़ा बैठ जाइए । (दिलीप बैठता है) हालाँकि मुझे आपका नाम नहीं मालूम है तो भी.....

दिलीप : दिलीप कुमार !

प्रवीण : मि० दिलीप कुमार, आपने मेरे दोस्तों को चपत लगा कर मुझे सख्त तकलीफ पहुँचाई, लेकिन एक तरह से आपने मेरा उपकार भी किया है ।

दिलीप : उपकार ? तो क्या आप अच्छे संगीत की इज्जत करने लगेंगे ?

प्रवीण : संगीत ? साहब, संगीत से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं !

दिलीप : अगर मेरी वजह से कला की इज्जत करना भी आप न सीखें तो भला मैंने आपका क्या उपकार किया ?

प्रवीण : मेरा इशारा उर्मिला और मेरे सम्बन्ध की ओर है । (उर्मिला से) उर्मिला, जीवन में जानबूझ कर मैं जोखिम लेना पसन्द नहीं करता और— (कुछ रुककर).. और मि० दिलीप कुमार के कारण एक बात साफ़ हो गई कि मेरा और तुम्हारा विवाह एक बड़े जोखिम वाला सौदा होगा !

उर्मिला : मनुष्य का तो सारा जीवन ही जोखिमों से भरपूर है ।

दिलीप : लेकिन, उर्मिला देवी, इस पुस्तक यानी, “सफल जीवन की कुंजी” के छठे अध्याय, पृष्ठ छयानवे पर लिखा है (पढ़ता हुआ) ‘याद रखो, विवाहित जीवन में जोखिम लेना फूस के छप्पर पर आतिशबाजी से खिलवाड़ करने के मानिन्द है ! जिंदगी का सबसे बड़ा उसूल... ..’

प्रवीण : मि० दिलीप कुमार, मुझे शक होता है कि शायद आप इस बेशकीमत किताब का मखौल उड़ा रहे हैं !

दिलीप : इसे आप मखौल कहते हैं ? अरे, साहब मैं तो इसे एक ही निगाह में पढ़ गया और तभी खोज-खोजकर इसके मोती आपके सामने रख रहा हूँ !

प्रवीण : और मुझे एक और शक हो रहा है । मालूम होता है कि आप उर्मिला से प्रेम करते हैं और उर्मिला आप से !

दिलीप : (पुस्तक के पन्ने जल्दी-जल्दी उलटता हुआ) प्रवीण बाबू आपकी इस अनोखी बात का तो हवाला इस किताब में कहीं नहीं मिलता, कहीं भी नहीं !

उर्मिला : आप इस किताब को इसके पुजारी को लौटा दीजिए !

दिलीप : (चौंके का अभिनय) यानी...आप भी इनके संदेह को सच मानती हैं.....

उर्मिला : चुप रहिए ! (खड़ी होकर प्रवीण से) प्रवीण, तुम समझते हो कि इस तरह मेरे मत्थे दोष मढ़कर और खुद नादान बने रहकर तुम दुनिया को धोखा दे सकोगे और विवाह के बाद मुझे हमेशा के लिए दबा कर रख सकोगे, अपनी पवित्रता और नेकनीयती के ढकोसले के नीचे !

दिलीप : ठहरिए जरा.....

उर्मिला : और शायद तुम्हारी इतनी हिम्मत इसलिए भी है कि मैं एक आधुनिक और ऐशपसन्द लड़की इस साधारण म्यूजिक मास्टर से शादी करने का तो विचार भी मन में नहीं लाऊँगी ? यही न तुम्हारी चाल है ?...लेकिन मैंने तय किया है, अभी-अभी तय किया है कि इसी शस्त्र के साथ शादी करूँगी, चाहे इनके पास कानी-कौड़ी भी न हो ।

दिलीप : (शरारत भरी मुद्रा) और मेरी भी तो मर्जी पूछ ली जाय !

उर्मिला : आप चुप रहिए !

प्रवीण : (विनीत स्वर में मानो आवरण हट गया हो) उर्मिला... उर्मिला...मैं भी तो तुमसे प्रेम करता हूँ ।

उर्मिला : (हेयभाव से ।) हूँ ! (बैठती है) पुगने जमाने में कापालिक योगियों को अपनी योगसाधना पूरी करने के लिए आखिर में एक कुमारी की जरूरत पड़ती थी ! ऐसे ही शायद तुम्हें मेरे प्रेम की जरूरत है ! जीवन के किनारे से तुमने कुछ काँच के टुकड़े उठा लिये हैं, जिन्हें तुम आदर्श कहते हो और जिन्हें

जोड़-जोड़कर तुम अपने लिए एक दर्पण सा बना रहे हो । क्या उस दर्पण की तुम्हारी छायामूर्ति को मैं असलियत समझूँ ? तुम प्रेम करते हो, मुझ से नहीं, उस छायामूर्ति से जो तुम्हारा कार्टून है ! लेकिन मैं तो आदमी से शादी करना चाहती हूँ, कार्टून से नहीं !

दिलीप : उर्मिला देवी ! मैं आपको जान बूझ कर जोखिम का काम नहीं करने दूंगा । मैं तो फक्कड़ हूँ ! जिन्दगी मेरे लिए एक बहाव है, बस !

उर्मिला : मेरे लिए भी ! हम दोनों इस बहाव में बहेंगे, तिनकों की तरह नहीं, नौकाओं की तरह जो लहरों पर आरुढ़ होती हैं !

प्रवीण : मेरी बर्दाश्त की सीमा गुजर चुकी है ! उर्मिला, मेरे मकान मे मेरी ही भेंट की हुई साड़ी और जेवर पहन कर, तुम मेरे ही सामने इस गलियों में भटकने वाले व्यक्ति से साँठ-गाँठ लगा रही हो !

दिलीप : यह क्या, प्रवीण बाबू ? आप और इस तरह जामे से बाहर ? आपने तो इस (किताब उठाता हुआ) किताब की लुटिया ही डुबा दी !

उर्मिला : जेवर ? (नेकलेस निकालती हुई) यह लो अपना नेकलेस ! (पलंग पर फेंकती है और.....)

दिलीप : ठहरो उर्मिला ! (मुस्कराता हुआ) साड़ी बाद में भिजवा देना !

प्रवीण : मैं कहता हूँ—

(चन्दू का प्रवेश ।)

चन्दू : हुजूर...वे लोग बाजा लाने नहीं देते !

प्रवीण : कौन लोग ?

चन्दू : चारों मेहमान ! वापस आ गये हैं और कहते हैं.....

(अटक जाता है ।)

प्रवीण : बात पूरी करो चन्दू !

चन्दू : कहते हैं कि बाजे वाले बाबू की अक्ल दुरुस्त किये बिना हम यह बाजा नहीं छोड़ेंगे !

प्रवीण : (मानो सिकन्दर पोरस से बातें कर रहा हो) कहिए मि० दिलीप कुमार, क्या ख्याल है ? न्याय की माँग मानकर आप को उन लोगों के हवाले करूँ या—

उर्मिला : या ?

दिलीप : उर्मिला के नाम पर तरस खाकर छोड़ दूँ ? यही न कहने वाले थे प्रवीण बाबू ? तो साहब आपके तरस का यहाँ कोई भूखा नहीं है ! आप जाइए और अपने अरमान पूरे कीजिए ! बन्दा हाजिर है !

प्रवीण : (तैश में) यह बान है !...वाद में न भीकता उर्मिला कि तुम्हारे प्रेमी को बचाया नहीं ! लेकिन लातों के भून बाणों से नहीं मानते ! मेरे ही घर में और यह शेखी...

[तेज़ी से जाता है, चन्दू भी पीछे-पीछे उन दोनों की तरफ़ देखते हुए जाता है ।]

दिलीप : आ गये न अपनी अमलियत पर ! कच्चा रोगन कब तक ठहरेगा ?

उर्मिला : (चिन्तित स्वर) लेकिन...लेकिन अब क्या होगा ?

दिलीप : मामला बेढब है ! ..वे पाँच और मैं अकेला !...हड्डी पमली का पता नहीं रहेगा !

उर्मिला : (हाय री, नारी !) मुझे डर लग रहा है !

दिलीप : सामने के दरवाजे से वे लोग आ रहे हैं ! बाथरूम की तरफ
खूँखार कुत्ता—

उर्मिला : (भयातुर) वे लोग आ रहे हैं...ओह !

[दिलीप के पास सट कर खड़ी हो जाती है और
उसकी बांह पकड़ लेती है ।]

दिलीप : बस एक ही रास्ता है ! (उर्मिला की बांह पकड़ कर खिड़की
की तरफ ले जाता हुआ) चलो, उर्मिला !

उर्मिला : कहाँ ?

दिलीप : खिड़की की राह ! (खिड़की खोलकर उर्मिला को सहारा
देकर खिड़की के पार उतारता हुआ) जल्दी चलो !
(स्वयं खिड़की के पार उतरता है ।)

उर्मिला : (हँसते हुए) मैंने ठीक कहा था ।.....

(दोनों अब खिड़की के उधर है ।)

दिलीप : कि मैं कायर हूँ (हँसी) लेकिन क्या रुक्मिणी ने कृष्ण को
कायर कहा ! या संयोगिता ने पृथ्वीराज को ? (फिर हँसकर)
चलो !

[दोनों की बातचीत की आवाज़ धीमी हो जाती है,
क्योंकि वे चले जा रहे हैं और कमरा खाली है ।]

उर्मिला : आपका वायलिन ! जान से प्यारा !!

दिलीप : वायलिन ! (प्रसिद्ध गीत के स्वर में) तुम हो मेरे संग,
वीणा है मेरे संग—

उर्मिला : (उसी तान में) “आगे बढ़ा कदम !”

[दोनों हँसते हुए गायब हो जाते हैं और उस तरफ़
हँसी की प्रतिध्वनि गूँजती-सी जान पड़ती है !]

(पर्दा गिरता है ।)



अन्धकार और प्रकाश

श्री उदयशंकर भट्ट

पात्र

महेन्द्र	—	सेना में कैप्टन
हरीन्द्र	—	महेन्द्र का मित्र
रमा	—	महेन्द्र की बहन
उमापति	—	गोविन्द का पिता
पत्नी	—	गोविन्द की माँ ।
उमा	—	गोविन्द की पत्नी
ब्रह्मा	—	उमापति का नौकर
तिवष्टू	—	महेन्द्र का नौकर

[कैप्टन महेन्द्र का कमरा । कमरे में दीवार पर भुससे भरा एक मगर, दो हिरणों के मुख, एक चीते की खाल फैली हुई मुख के साथ टेंगी है । कुछ पुरानी युद्ध की तस्वीरें, पश्चिमाभिमुख कालीन पर बड़ी-बड़ी समुद्री कौड़ियां दोनों तरफ बीच में एक बड़ा शंख, ताजमहल की सेलखड़ी की इमारत । उसके नीचे मेज़ पर अस्त-व्यस्त कुछ पुस्तकें, जिनमें अधिकतर शिकार की हैं, कोडक का एक केमरा, दावात, होल्डर, एक फाउण्टेनपेन, मेज़पोश मैला स्याही रंग का, उसके पास एक कुर्सी, बीच में कालीन के किनारे किनारे दो सोफ़ासेट, कालीन के ऊपर छोटी मेज़ पर गुलदस्ता । दक्षिण की दीवार पर दो बंदूकें उसके पास चमड़े के दो बड़े सूटकेस, उनमें एक अच्छा और दूसरा पुराना, कमरा काफी लम्बा चौड़ा है । पश्चिम की दीवार की तरफ एक दरवाज़ा, जो भीतर मकान में जाता है । उत्तर की दीवार में एक बड़ी खिड़की, जिससे बंगले के बाहर बाग का कुछ भाग दिखाई देता है । बहुत दिनों के बाद कमरा खुलने से ज्ञात होता है कि अभी अभी उसकी सफ़ाई की गई है । फिर भी हर चीज़ बेतरतीब है । दीवार की खूंटियों पर फौजी बंदियां टेंगी हैं । मेज़ के पास कुर्सी पर चमड़े की पेटी में एक रिवाल्वर लटक रहा है । समय सायंकाल, लगभग छः बजे, फिर भी जाड़े के दिन होने के कारण कमरे में बिजली का प्रकाश है । गुमसुम मुद्रा में महेन्द्र टहल रहा है । मानों एक एक कदम पर जोर देकर चल रहा हो । महेन्द्र की बयस लगभग सत्ताइस अट्ठाइस, ऊँचा कद, भरा हुआ शरीर, चौड़ी छाती,

गौर वर्ण, दाढ़ी मूँछें साफ़, उन्नत मस्तक, बड़ी बड़ी आँखें भूरापन लिये, खुले हुए बटन की हाफ़स्लीव की छाकी कमीज़, छाकी निक्कर, छाकी स्टार्किंग। टहलते हुए कुछ बड़बड़ाता है। कभी ठहरकर कोई चित्र देखने लगता है, कभी शून्यदृष्टि से खिड़की से बाहर की ओर देखता है तो देखता ही रहता है। उसकी आकृति देखने से ज्ञात होता है जैसे वह अपने भीतर के संघर्ष को दबा रहा है। और कभी हँसकर, अट्टहास करके मुस्कराकर उसे पी जाना चाहता है। किन्तु थोड़ी ही देर में फिर उसके ऊपर नशे की तरह मानसिक द्वन्द्व छाजाता है। फिर उसी में वह डूब जाता है। डूबा रहता है। जैसे सामने, दायें, बायें, कहीं भी कुछ न हो। एकाएक रिवाल्वर निकाल कर उसे देखता है फिर उसका ट्राइगर दबाने की कोशिश करता है। रिवाल्वर खाली है। फिर कारतूस भरता है। फिर निकाल लेता है ! रिवाल्वर लेकर घूमता है। फिर रख कर विचारों में डूब जाता है। एकदम सोफ़े पर धम्म से बैठ जाता है। जैसे उसके ऊपर किसी विचार ने भयानक आक्रमण कर दिया हो। दोनों हाथों से आँखें मीच लेता है। उसकी सारी चेष्टा कभी कभी एक विकृत मस्तिष्क के मनुष्य की सी हो उठती है। और थोड़ी देर में फिर स्वस्थ सा अनुभव करने लगता है। किन्तु कुछ थोड़ी देर को। फिर उसी कल्पना के संघर्ष में डूब जाता है।]

महेन्द्र : [एकाएक ठहाका मारकर जोर से हँसता ही रहता है उसके हँसने से सारा कमरा गूँज उठता है। इसी समय पश्चिम की तरफ़ से नौकर आता है। और चुपचाप साहब की गति-विधि देखकर लौट जाता है।] खूब, मैं भी खूब हूँ। भला

इसमें चिन्ता की क्या बात है। पागल, मैं भी पागल हूँ। जो होगया सो हो गया। और वह भी क्या...वह ठीक ही तो हुआ है। मैं भी हूँ खूब। (अपने को सतर्क, सावधान करने की चेष्टा में सिर हिलाकर आँखें खोलकर, शरीर हिलाकर देखता है। जैसे उसके विचारों का भूत बिलकुल व्यर्थ, काल्पनिक हो। इसी समय वंसी ही सुन्दर गठन का एक युवक प्रवेश करता है। युवक का लम्बा-चौड़ा कद, सफ़ेद पतलून, सफ़ेद कमीज पहने, हाथ में रुमाल, लापर-वाही से चलता हुआ आता है, युवक की आँखों में शरारत का भाव है। पास ही काउच पर बैठ जाता है।)

हरीन्द्र : क्या हो रहा है महेन्द्र ? अरे, तुम कैसे देख रहे हो, क्या पी ली है ? ओः, मैं भूलता हूँ तुम पीते तो हो नहीं। जाने दो। हाँ, क्या तुम शिकार से लौट आये ? कहो कैसा रहा ?

महेन्द्र : हाँ, लौट आया ? (धीमी आवाज में रुक-रुक कर) लौट आया। ओः (आँखें बन्द करके हृदय के भावों को दबाता हुआ) लौट आया हरीन्द्र !

हरीन्द्र : क्यों क्या हुआ है तुमको ?

महेन्द्र : (चेतन होकर) क्या, क्या हुआ है मुझको ? मैं तो ठीक हूँ। बिल्कुल ठीक हूँ। तुम, तुम कहो। तुम न चले। बहुत मजा आया।

हरीन्द्र : क्या कहूँ, मैं तो चल ही न सका। गोविन्द कहाँ है ?

महेन्द्र : गोविन्द (चौंककर) गोविन्द (हँसकर) गोविन्द गया।

हरीन्द्र : (ताड़ने के भाव से मोला बन कर) कहाँ, कहाँ गया ! क्या घर गया है ? यह अच्छा ही हुआ जो घर चला गया। ऐसे आदमी का घर में रहना...खतरनाक है।

महेन्द्र : खतरनाक, खतरनाक क्यों (हरीन्द्र की आँखों में आँख गड़ाकर) खतरनाक क्यों !

हरीन्द्र : (उठकर टहलने लगता है) खतरनाक तो है ही । मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि उसकी आँखें उमा की तरफ़ ठीक नहीं हैं ।

महेन्द्र : हैं, (जैसे भीतर ही भीतर उठते हुए तूफ़ान को दबा रहा हो ।)

हरीन्द्र : इस घर में, अकेले घर में उसका इस तरह रहना...

महेन्द्र : मैं देख चुका हूँ । (जोर से) मैंने अपनी आँखों से देखा है । मैंने इसीलिये...

हरीन्द्र : (लौटकर) इसलिये क्या, उसे घर से निकाल दिया है ?

महेन्द्र : (चुप)

हरीन्द्र : जवान लड़की के साथ ऐसे आदमी का घर में रहना, हँस-हँस कर बात करना, घण्टों एकान्त में बैठे रह कर पढ़ाने का बहाना बनाना; यह सब...

महेन्द्र : (उठकर) पिछले एक सप्ताह में छुट्टी से लौटकर मैंने जो देखा उसे...ह ह ह (हँसता ही रहता है) यह भी खूब रहा ।

हरीन्द्र : (भौंचक्का और संदेहग्रस्त होकर) क्या खूब रहा ?

महेन्द्र : मैंने, मैंने उसे मार दिया ।

हरीन्द्र : मार दिया ! कहाँ मार दिया ? कैसे मार दिया ?

महेन्द्र : शिकार में और कहाँ ! (गुमगुम हो जाता है)

हरीन्द्र : शिकार में, क्या वह तुम्हारे साथ शिकार खेलने गया था ?

महेन्द्र : हाँ, वह तो नहीं जा रहा था । मैं ही उसको जबरदस्ती ले गया, और मार दिया ।

हरीन्द्र : (भीतर की प्रसन्नता दबाकर अफ़सोस करता हुआ) मार दिया तो वह घर नहीं गया ?

महेन्द्र : नहीं, असली घर गया । जहाँ से कभी कोई नहीं लौटता । और...। (हँसता ही रहता है)

हरीन्द्र : और, और क्या ?

महेन्द्र : उसे शेर खा भी गया । ओः न जाने मुझे । गोविन्द...। मैंने आते हुए पुलिस में उसके मरने की खबर भी दे दी ।

हरीन्द्र : पुलिस में उसके इस तरह मारे जाने की खबर भी दे दी ?

महेन्द्र : अब मुझे संतोष है हरीन्द्र, मैं यह नहीं देख सकता कि कोई मेरी बहन को इस तरह देखे, उसके माथ हँसे । उसे... (ज़ोर से) कोई बुरी निगाह से देखे । मैंने ऐसे पचासों आदमियों को हँसते हँमते मार दिया है लड़ाई के मैदान में । गोविन्द (थूकता है) तुम्हारा कहना बिलकुल सच था ।

हरीन्द्र : (जो उसके ज़ोर के बोलने से सहम सा गया है स्वस्थ होकर) तुमने बहुत ही अच्छा किया कॅप्टन ! मैं तो जैसे यह सब देखकर भीतर ही भीतर घुटता रहा हूँ । मैंने इन आँखों से जो देखा है वह तुमसे...

महेन्द्र : मैं रमा को भी मार दूँगा । जाने से पूर्व उसका काम भी समाप्त कर दूँगा । मुझे बताओ—अब तक मैं समझता था गोविन्द की ज्यादाती थी । रमा भी अब...।

हरीन्द्र : (डरकर) नहीं, नहीं, रमा का कोई अपराध नहीं है महेन्द्र, वह तो सीधी-सादी भोली लड़की है ।

महेन्द्र : (घुड़ककर) लेकिन तुम तो कहते थे तुमने इन आँखों से देखा है !

हरीन्द्र : केवल गोविन्द को रमा से हँसते ही कॅप्टन, और कुछ नहीं ।

महेन्द्र : महेन्द्र अपने घर को लाञ्छित नहीं देख सकता । मैं मिलिटरी में हूँ हरीन्द्र, मनुष्य को मार देना मेरे बायें हाथ का खेल है । मैंने अब तक मारना ही तो सीखा है । (रिवाल्वर निकालकर कारतूस भरता है । और निशाना हरीन्द्र की ओर करता है)

हरीन्द्र : यह क्या कर रहे हो महेन्द्र, यह क्या कह रहे हो; क्या मेरे ही ऊपर ?

महेन्द्र : अरे डर गये । हहह हहह । डर गये । ठहरो मैं तुम्हें नहीं मारूँगा । तुम भी तो मेरी बहन से प्रेम करना चाहते हो न ?

हरीन्द्र : नहीं, नहीं मैं क्यों, नहीं, नहीं महेन्द्र, रिवाल्वर हटालो ईश्वर के नाम पर इसे पेट्टी में रखलो । रखलो ।

महेन्द्र : डरो नहीं, मैं हत्यारा नहीं हूँ । हूँ हत्यारा...मैंने गोविन्द को मारा है । मैं हत्यारा हूँ । मैंने गोविन्द को मारा है । नहीं, मैंने गोविन्द को नहीं मारा उसे शेर खा गया ।

हरीन्द्र : अच्छा मैं चलूँ कैप्टन । मैं जाता हूँ ।

महेन्द्र : (कड़ककर) सुनो ।

हरीन्द्र : कहिये ।

महेन्द्र : तुम मेरी एक बात मानोगे !

हरीन्द्र : क्या !

महेन्द्र : मैं फौज में लौटने से पहले रमा की शादी कर देना चाहता हूँ ।

हरीन्द्र : अच्छी बात है । यह तो होना ही चाहिये ।

महेन्द्र : तुम तैयार हो ।

हरीन्द्र : प्रस्ताव बुरा नहीं है सोचूँगा ।

महेन्द्र : सोचूंगा, क्या सोचूंगा । तुम्हें इसी समय उत्तर देना होगा ।
बोलो (रिवाल्वर निकालता है ।)

हरीन्द्र : अरे, तो तुम रिवाल्वर क्यों निकालते हो, क्या मुझे मारोगे ।
मालूम होता है तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है । ज़रा आराम
करो फिर फुर्त से बातचीत होगी । इस समय मुझे
भ्राजा दो ।

महेन्द्र : तो क्या तुम विश्वास करते हो कि मैंने गोविन्द को मारा
है ! नहीं, मैंने उसे नहीं मारा । उसे तो शेर खा गया ।
भला आदमी मचान से गिर पड़ा और बस...

हरीन्द्र : यह तो है ही । सुनो महेन्द्र, मैं तुम्हारी जगह होता तो मैं
भी यही करता जो तुमने किया है । मैं इसे बिल्कुल बुरा नहीं
समझता ।

महेन्द्र : तुमने ठीक कहा दोस्त । तुमने ठीक कहा—मैं तुम्हारी जगह
होता तो मैं भी यही करता । तो तुम विश्वास करते हो कि
मैंने उसे मारा; मैं हत्यारा हूँ । (जोर से) मैं हत्यारा हूँ ।
बोलो, बोलते क्यों नहीं ।

हरीन्द्र : तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है । मैं फिर आऊँगा । (चला
जाता है ।)

महेन्द्र : ठहरो, ठहरो (हरीन्द्र लौटता है और महेन्द्र हँसता है)
अच्छा जाओ । जाओ । (हरीन्द्र जाते हुए 'हत्या' शब्द कहता
है) मैं हत्यारा हूँ । मैंने गोविन्द को मारा है (धीरे-धीरे स्वर
ऊँचा होता जाता है) मैंने गोविन्द को मारा है । नहीं, मैंने
नहीं मारा...नहीं मैंने नहीं मारा—हा हा हा हा हा हा
(हँसता है) कौसी विचित्र बात है । अरे तुम गोविन्द, कोने
में क्यों खड़े हो, इधर आओ । (खड़ा होकर धीरे-धीरे) तुम,

तुम, गोविन्द, (पेटी से रिवाल्वर निकाल कर) कुत्ते, मौत के शिकंजे से बच कर तू निकल आया। अब नहीं बचेगा— नहीं, अब नहीं बचेगा। (ट्राइगर दबाता है गोली छूट जाती है और कपड़ों में जाकर लगती है। नौकर रमा और महेन्द्र की माँ दौड़कर आती हैं)।

माँ : क्या हुआ, क्या हुआ बेटा ?

रमा : क्या हुआ, क्या हुआ भैया ?

नौकर : कैसी गोली चली ? क्या हुआ साहब को माँ जी !

(महेन्द्र चुपचाप काउच पर बैठ जाता है। आँख फाड़े देखता रहता है)

महेन्द्र : कुछ नहीं। कुछ भी तो नहीं। अरे तुम डर गईं। मैं प्रेक्टिस कर रहा था। मैं मिलिटरी में हूँ न, रोज इसी तरह गोली चलानी पड़ती है। जाओ, जाओ, (जोर से) जाओ अदर।

माँ : बेटा, कैसी तबियत है ?

महेन्द्र : (चैतन्य होकर) ठीक हूँ माँ तुम जाओ।

माँ : नहीं तुम्हारी तबियत ठीक नहीं है। शिकार से लौटते ही तुम्हें न जाने क्या हो गया है। तिकखू देख, डाक्टर उमानाथ को तो बुला ला।

तिकखू : बहुत अच्छा।

महेन्द्र : नहीं, डाक्टर की कोई जरूरत नहीं है। मैं ठीक हूँ माँ, मैं ठीक हूँ वह तो वैसे ही गोली चल गई। तुम जाओ। रमा, तुम ठहरोगी।

(नौकर और माँ चले जाते हैं)

रमा : (सकपकाई हुई) क्या है भैया।

महेन्द्र : (उसकी तरफ़ देखता रहकर) गोविन्द तुम्हारे साथ मज़ाक करता था न, कुदृष्टि से तुम्हें देखता था न ?

रमा : नहीं तो, तुम से किसने कहा !

महेन्द्र : मैंने स्वयं अपनी आँखों से देखा है कि वह तुम्हारे साथ हँसता था ।

रमा : तो हँसना क्या बुरी बात है । वे तो बहुत अच्छे आदमी हैं । मैंने उनमें कोई ऐसी बात नहीं देखी ।

महेन्द्र : (क्रोध से) हँसना कोई बुरी बात नहीं है दुष्टे, मैं तुम्हें मार डालूँगा ।

रमा : (बैसे ही निर्भीक रहकर) उनकी दृष्टि शुद्ध है । वे दार्शनिक है, भोले है, उन्हें कभी-कभी अपनेपन का, अपनी चीज़ों का भी ध्यान नहीं रहता इसीलिये मैं उन पर हँसा करती हूँ भैया ।

महेन्द्र : वे दार्शनिक है ।

रमा : हाँ, उसी दिन वे एक घण्टे तक अपनी कमीज ढूँढ़ते रहे हालाँकि वह इसी कमरे में सामने की खूँटी पर टँगी थी । वह आज भी वैसी ही टँगी है । अरे, उसी में आपने गोली मार दी । यह क्या किया आपने ?

महेन्द्र : तू क्या कह रही है । तुम स्त्रियो का विश्वास नहीं करना चाहिये । तुम लोग झूठी हो ।

रमा : आपको ऐसा कहने का साहस कैसे हुआ ? क्या मैं झूठ बोलती हूँ । मैं झूठ क्यों बोलूँगी । वे मेरी सखी उमा के पति हैं । मैं उन्हें तब से जानती हूँ जब वे मेरे साथ कालेज में दो क्लास ऊपर पढ़ते थे । उन दिनों भी एकबार वे नंगे पैरों कालेज चले आये । जब लडकों ने उनसे कहा तो बोले— मैं

समझ रहा था कि मैं जूते पहने हूँ। इस पर सारे कालेज में वे दार्शनिक के नाम से प्रसिद्ध हो गये।

महेन्द्र : और तू उसके सम्बन्ध में क्या जानती है। वह बनावटी धूर्त था। मुन, मेरे रहते यह नहीं हो सकता कि कोई मेरे घर में मेरी बहन को कुदृष्टि से देखे, मैंने.....।

रमा : आपको भ्रम हुआ है भैया। जीवन में इतना सरल साधु-स्वभाव का आदमी मैंने नहीं देखा। तभी मैंने आपकी अनुपस्थिति में उनसे ठहरने को कहा। वे केवल कुछ दिन ही तो ठहरे। और अलग रहने के लिए छुटपटा रहे थे। शायद वे कल से नया मकान लेकर रहने चले भी गये हैं। इसके अतिरिक्त उमा ने लिखा था—‘तुम इनका ध्यान रखना इन्हें भाई की तरह मानना। अकेले रहकर कहीं ऐसा न हो कि ये बीमार पड़ जाँय।’ यह उसका पत्र अभी तक मेरे पास है।

(पत्र सामने रख देती है। महेन्द्र पढ़ता है।)

जीजी,

.....ये प्रोफ़ेसर अपाइण्ट होकर नौकरी करने के लिए तुम्हारे शहर में आ रहे हैं। तुम तो जानती हो घर में किसी बात की कमी नहीं है। फिर भी इन्हें धुन है कालेज में नौकरी करने की। भला ऐसे विद्वान् को, जो तीन विषयों का फर्स्ट क्लास एम० ए० हो, कौन नहीं रखना चाहेगा। प्रिन्सिपल ने स्वयं इन्हें वहाँ आने को लिखा है। शायद ठहरने को भी उन्हें अपने यहाँ ही कहा है किन्तु मैं जानती हूँ ये कितने भोले हैं, न कपड़ों का ध्यान है न खाने का, इसीलिये मैं आग्रह करके इन्हें तुम्हारे पास एकाध सप्ताह ठहरने के लिये भेज रही हूँ। मकान मिल जाने पर मैं

स्वयं आजाऊँगी । फिर हम लोग मिलेंगी ही । ज़रा अपने इन भोले बाबा शुक्रदेव का ध्यान रखना ।

तुम्हारी बहन,
उमा

१५ अगस्त, १९४६,

आगरा

महेन्द्र : (आवेश दबाकर) यह, यह...यह उमा कौन है ?

रमा : मेरी बी० ए० की क्लासफैलो । हम और यह इण्टर से एक साथ पढ़ रही हैं । बड़ी सीधी और भोली लड़की है, किन्तु गोविन्द बाबू से चतुर । उन्ही के साथ पिछले जाडों में इसका विवाह हुआ है । मैं भी विवाह में गई थी । तुम्हें मैंने पत्र में लिखा तो था । अरे तुम्हें क्या हो गया भैया ? तुम्हारा रंग उड़ता जा रहा है, तुम रो रहे हो...

महेन्द्र : कुछ नहीं रमा, कुछ नहीं, (एक वम उठकर रिवाल्वर उठा लेता है)

रमा : यह क्या कर रहे हैं आप, यह रिवाल्वर क्यों उठा रहे हैं भैया !

महेन्द्र : मुझे बड़ा भ्रम हुआ, हरीन्द्र ने मुझे धोखा दिया । मैंने बड़ा.....

रमा : (चकित होकर देखती रहती है) बहुत दिनों से मेरी फ्रेंच पढ़ने की इच्छा थी । मैंने उनसे फ्रेंच पढ़ना प्रारम्भ कर दिया है । अभी वह आने को कह गये थे । पर अभी तक आये नहीं ।

महेन्द्र : हरीन्द्र, दुष्ट हरीन्द्र, (क्रोध से उठकर टहलने लगता है) कुत्ते, पापी;

रमा : क्या हुआ, हरीन्द्र ने क्या किया ? वह नीच न जाने क्यों मेरे पीछे पड़ा हुआ है ? माँ से कई बार मेरी शादी का प्रस्ताव कर चुका है ।

महेन्द्र : (निर्जीव-सा काउच पर गिर पड़ता है) बहन, मैं हत्यारा हूँ, मैं हत्यारा हूँ ।

रमा : आप क्या कह रहे हैं ? क्या हरीन्द्र....?

महेन्द्र : हाँ मैंने गोविन्द की हत्या कर दी है । मैं हत्यारा हूँ ।

रमा : (जैसे शरीर में हजार-हजार बिजलियाँ छू गई हों, चीख निकलती है) हत्या कर दी ? गोविन्द की हत्या कर दी ? कैसे-कैसे भैया । यह आपने क्या किया ? (वहीं बैठ जाती है) हाय, उमा.....

महेन्द्र : हाँ रमा, वह तुम्हारे सामने हँसा था इसी से उसकी मैंने हत्या कर दी । मैं उसे शेर के शिकार के लिये ले गया । वह कहाँ जा रहा था । उसने कभी शेर क्या, गीदड़ का भी शिकार नहीं किया था ।

रमा : (बहुत देर बाद) मैं उमा को.....

महेन्द्र : वहाँ जंगल में शेर के माँद से निकलने पर मैंने उसे मचान से नीचे धकेल दिया ।

रमा : (चुप होकर देखती रहती है जैसे उसकी इन्द्रियाँ जड़ हो गई हैं)

महेन्द्र : तुम देख रही हो । मेरी ओर आँखें फाड़ कर देख रही हो । हा हा हा हा, लोगों ने समझा उसका पैर फिसल गया । और वह गिर पड़ा । वह तो मचान पर भी नहीं चढ़ना चाहता था । मैंने ही डाटकर उसे मचान पर चढ़ाया । फिर भी वह निर्भय दिखाई दे रहा था । उसके चेहरे पर शान्ति

थी । फिर भी उसकी अवस्था उस बकरी के समान थी जो शेर के आने पर उसकी बलि के लिये बाँध दी जाती है । गोविन्द.....बिचारा गोविन्द, फ़िलासफी का प्रोफ़ेसर गोविन्द...हा हा हा हा (गँभीरता से) कितना अपलाप है जीवन का । कितना क्षणभंगुर है जीवन ! हा हा हा हा (हँसता है हँसता ही रहता है फिर एक दम गुम-सुम हो जाता है) गोविन्द, तुम नहीं, तुम मरे नहीं हो, तुम एक छाया की तरह मेरे शरीर में व्याप्त हो गये हो । रमा रमा...

रमा : (सूक होकर भाई की तरफ़ देखती हैं)

महेन्द्र : नहीं, मैंने नहीं मारा, मैंने नहीं फेंका गोविन्द को । झूठ है । झूठ है रमा.....गोविन्द यहाँ है । वह खड़ा है वह हँस रहा है । वह कोने में हैं । नहीं नहीं मुझे छोड़ दो । हट जाओ । हट जाओ, हट जाओ । मैंने गोविन्द को नहीं मारा है । नहीं.....(फर्श पर अचेत होकर गिर पड़ता है ।)

रमा : (जोर से चिल्लाती हैं) भैया ? हाय, कितना बड़ा भ्रम हुआ ।

एक पश्चात्ताप में जल रहा है । (आँखें फाड़कर देखती हुई) और.....एक ने बिना कारण मृत्यु का आलिङ्गन किया । निरपराध.....निर्दोष गोविन्द, कितना बड़ा भ्रम है जीवन में । क्या, क्या यह सब मेरे कारण नहीं हुआ ? मैं ..मे ही....अपराधिनी हूँ । हम दोनों के निश्छल पवित्र.....हँसने में विष भरा हुआ था यह मैंने आज ही जाना । उन्होंने महामृत्यु का आह्वान किया । अब उमा क्या कहेगी—

‘इसीलिए मैं आग्रह करके इन्हें तुम्हारे पास एकाध सप्ताह ठहरने के लिये भेज रही हूँ।’ (पत्र उठाकर पढ़ने लगती हैं पढ़ती रहती हैं, फिर एक दम दूर फेंककर, फूट-पूट कर रोने लगती हैं। इसी समय महेन्द्र चैतन्य हो जाता है।)

महेन्द्र : (रमा की ओर देखकर) तू रो रही है। रो खूब रो, जीभर कर रो। (इसी समय मेरा के पास रिवाल्वर लेने जाता है) मैं तुझे भी मार दूँगा। तुझे भी . दुष्टे, चाण्डालिनी पापिन, जहाँ गोविन्द गया, वही तुझे भी जाना होगा। (देखता है मेरा पर अधलिखा पत्र रखा है वह उसे पढ़ने लगता है, बेर तक पढ़ता रहता है।) यह गोविन्द का पत्र है।

रमा : मार दो, मुझे भी मार दो। मैं पापिन हूँ। मारो। मैं नैयार हूँ।

महेन्द्र : नहीं, नहीं, तू निरपराध है। यह पत्र कह रहा है, चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है तू निरपराध है, गोविन्द निरपराध है। मैं ही पापी हूँ। मेरा ही भ्रम था। भ्रम था। मेरी आँखों ने धोखा दिया। मैं हत्यारा हूँ रमा, मैं ही हत्यारा हूँ। (एक दम निकल जाता है)

दूसरा दृश्य

(गोविन्द के पिता उमापति, बड़ी अवस्था के वृद्ध एक पलंग पर तकिये के सहारे बंठे हैं। शरीर भुर्रियों से भरा हुआ, निर्बल। सामने एक समाचार पत्र पड़ा है। कुछ अलमारियाँ शीशे की, जिनमें किताबें भरी हैं। एक मेज जिसके पास एक कुर्सी। कुर्सी के पास ही किनारे की तरफ़ आराम कुर्सी बिछी है। यह गोविन्द के पढ़ने का कमरा है। उसके जाने के बाद कमरे में और कोई सजावट नहीं है।

केवल गोविन्द के भिन्न अवस्था के कुछ चित्र दीवार में टंगे हैं। उसके साथ ही एक चित्र उमापति और गोविन्द का है। बूढ़ कभी कभी घण्टों गोविन्द के चित्रों को देखते रहते हैं। भोजन पर कुछ समाचार पत्र तथा मासिक पत्र हैं। उनमें अधिकतर अंग्रेजी तथा कल्याण के विशेषांक हैं। पलंग के पास एक कोयलों से भरी एक अंगोठी रखी है। उमापति कभी-कभी कंबल में से हाथ निकाल कर हाथ ताप लेते हैं। बूढ़ा नौकर उनके पैर गरम कर रहा है। संध्या की तरह निष्प्रभ चेहरा। समय प्रातःकाल लगभग नौ बजे बजे।)

नौकर : (पैर दबाता हुआ) मालिक, बबुआ भैया की कोई चिट्ठी नहीं आई।

उमापति : (चौंककर) न मालूम इन लड़कों को क्या सूझती है। भला घर में किस बात की कमी है जो नौकरी करने गये।

नौकर : सो तो है ही मालिक, सो तो है ही। इतनी बड़ी जमींदारी, इतना बड़ा मकान। सभी कुछ तो है। फिर भी न जाने क्यों चले गये। गौ, हैं गौ बबुआ भैया।

उमापति : (पैर बदल कर) बड़ी सदी है पैर ढक दे चन्ना। और देख, भीतर जाकर बहू से पूछ गोविन्द की कोई चिट्ठी नहीं आई क्या ? जब से गया है कोई चिट्ठी नहीं भेजी।

(चन्ना जाता है)

इस लड़के को कौन समझावे कि बूढ़े बाप के हृदय में तेरे लिये कितना स्नेह का सागर उमड़ता रहता है। बुढ़िया माँ मानों सूरत देख कर जी उठती है। क्यों न हो इकलौता लड़का, आज्ञाकारी, सुशील। (बच्चेपन की तस्वीरों को देखता हुआ) बबुआ, तुम बड़े नटखट हो। भला तुम्हारे

लिये घर में क्या नहीं है, किस बात की कमी है। फिर भी तुम नौकरी करने गये। (हँसकर) बड़े नटखट हो तुम। (चन्ना आता है ।)

चन्ना : मालिक, बहू कहती हैं अभी उस दिन जो चिट्ठी आई थी वह आप देख ही चुके हैं।

उमापति : क्या कहा, अभी उस दिन जो चिट्ठी आई थी उसे मैं देख चुका हूँ ?

चन्ना : हाँ, मालिक।

उमापति : तो तूने बताया क्यों नहो रे।

चन्ना : मालिक आपको तो रोज़ उनकी एक चिट्ठी चाहिये। तभी पेट भरे।

(उमापति की पत्नी का प्रवेश)

पत्नी : सुनते हो।

उमापति : हाँ कहो क्या है ?

पत्नी : देखो, बहू को कड़े हीरे के चाहिये। मैंने तुम से कितनी बार कहा है मेरी बहू सोने के कड़े नहीं पहनेगी। सोने के तो सभी पहनते हैं मैं इकलौते लड़के की माँ हूँ। कोई नंगी भूखी तो हूँ नहीं जो मेरी बहू साधारण ढँग से रहे।

उमापति : तो तुम से कौन मना करता है। हीरे के कड़े बनवा दो। नई बहू है तो नये ही गहने तो चाहिये क्यों चन्ना ?

चन्ना : हाँ मालिक—बहू रानी हैं तो हीरे के ही तो पहनेंगी। बहू क्या है साक्षात् लच्छमी का औतार है। जैसे बबुआ राजा वैसे ही बहू। बनवा दो माँ जी। कहो तो सुनार को बुला लाऊँ।

पत्नी : हाँ अभी बुलाला, जा ।

(दरवाजा खटखटाने की आवाज)

उमापति : देख तो कौन है रे !

(चन्ना जाकर दरवाजा खोलता है महेन्द्र का अस्त-व्यस्त वेश में प्रवेश । वैसी ही खाकी वेश भूषा में महेन्द्र आता है । उमापति खाकी वर्दी के आदमी को देखकर डर जाते हैं । एकदम उठकर खड़े हो जाते हैं महेन्द्र के पास आने पर पत्नी भीतर चली जाती है ।)

उमापति : (भौंचक्का सा होकर देखता रहता है) क. क. हिये ? क् क् क्या चाहते हैं आ S S प !

महेन्द्र : मैं देहरादून से आया हूँ । गोविन्द का यह पत्र है !

उमापति : (उछलकर) देहरादून से, गोविन्द का पत्र लेकर आये हैं आप बैठिये । कहिये गोविन्द प्रसन्न तो है न ! अरे मैं भी कँसा हूँ जब पत्र भेजा है तो प्रसन्न तो होगा ही । लाइये देखूँ पत्र । अरे सुनती हो, देखो गोविन्द का पत्र लेकर यह सज्जन देहरादून से आये है । आओ जल्दी । आओ आओ न !

पत्नी : (नेपथ्य से) आ तो रही हूँ । इतनी जल्दी काहे की है । आ रही हूँ । (सामने आकर) लो आ गई । तुम आये हो देहरादून से, खुशी रहो बेटा । यह देहरादून से आये है, तो इन्हें बैठाओ । बैठ जाओ बेटा, यहाँ आराम कुर्सी पर बैठो । यह तो नहीं कि बैठते, लगे चिल्लाने जैसे कोई मुसीबत आ गई हो । अरे चन्ना, तू भी खड़ा देख रहा है । इन्हें बैठा । पानी आनी पूछ । हाय हाय, देखो तो कँसा चेहरा उतरा हुआ है । क्या करे बिचारा, भीड़ क्या रेल में

थोड़ी होती है आजकल ? तुम रात को तो क्या सोये होंगे ?
अब खाओ, पीयो, आराम करो ।

उमापति : हाँ पत्र तो दो, देखूँ क्या लिखा है ।

पत्नी : हाँ देखो तो क्या लिखा है । मैंने तो रात को गोविन्द को
सपने में देखा था । (उमापति पत्र लेकर पढ़ने लगता है)
जरा जोर से पढ़ो न ! मैं भी तो सुनूँ ।

उमापति : लो सुनो, लिखता है—

बन्दनीय बाबू जी,

सादर प्रणाम के पश्चात् निवेदन है कि मैंने कालेज में
अध्यापन कार्य प्रारम्भ कर दिया है । प्रिन्सिपल मुझ पर
बहुत प्रसन्न हैं । वैसे भी वे मेरे गुरु हैं । इसके अतिरिक्त
बहन रमा के स्थान पर, जहाँ मैं ठहरा हुआ हूँ, मुझे पूर्ण
सुख है । वह मेरा बहुत ध्यान रखती हैं, क्यों न हो, आखिर
वे उमा की पुरानी सखी हैं न ?

पत्नी : (बीच में ही टोककर) बहू का नाम लेते इसे शर्म नहीं
आती । लो सुनो, हाय हाय, कैसा समय है । तुम भी तो कुछ
नहीं कहते ।

चन्ना : हाँ मालिक, राजा बाबू तो बहुत लिखे पढ़े हैं न ?

उमापति : और क्या, और वह कौन थोड़ा पढ़ा है । मेरे पुरुषों का वंश
तार दिया लड़के ने । हाँ, आगे सुनो,

‘इधर पिछले सप्ताह रमा के भाई केप्टन महेन्द्र छुट्टी
पर आये हैं । बहुत सज्जन, बहादुर और विवेकी आदमी
दिखाई पड़े । मुझे तो उन्हें देखकर ऐसा लगा कि मानों कोई
मेरा ही भाई हो ।

मैं यत्न कर रहा हूँ रमा को अधिक कष्ट न दूँ इसलिये दो चार दिन में मैं एक मकान ले लेने की चिन्ता में हूँ। उसी समय उमा को बुला लूँगा। आप उससे कह दीजियेगा। यहाँ का मौसम बड़ा मुहावना है। माँ को प्रणाम।

आज्ञानुवर्ती—
गोविन्द

पुनश्च—

हमारे भाई महेन्द्र मुझ से शिकार पर चलने का आग्रह कर चुके हैं। यद्यपि मुझे शिकार का कोई शौक नहीं फिर भी उनके आग्रह से जाना ही होगा। यह जीवन भी…… (पत्र खाट पर रखकर उठता हुआ) अधूरा पत्र है। शायद्, शायद् तो क्या भैया, तुम्हीं महेन्द्र हो। वाह, कितनी प्रसन्नता की बात है। मेरे भाग खुले।

पत्नी : आदमी की भलमंसाहत उसके चेहरे से झलकती है। चन्ना जा, कुछ चाय पानी का इन्तजाम कर रे ! असबाव कहाँ है तुम्हारा ?

उमापति : अरे तुम भी वही रहों, भला महेन्द्र यहाँ आवेंगे और असबाव लेकर आवेंगे ? वाह भैया, तुम खूब आये। मानों मेरा गोविन्द ही आगया हो।

पत्नी : खाना बनाऊँ।

उमापति : यह भी कोई पूछने की बात है ? अच्छा खाना बनाना भला ! केप्टन महेन्द्र कोई छोटे-मोटे आदमी नहीं हैं।

महेन्द्र : सुनिये, मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि कि—(दोनों चौकन्ने होकर सुनते हैं, तत्क्षण ही)

उमापति : अरे तो बात करने के लिये और समय थोड़ा है। तुम उठो न्हाओ धाँओ, खाना खाओ, आराम करो। लो इस खाट पर

बैठो । चन्ना इनका ग्याल रखिये । मैं ज़रा बाज़ार जाऊँगा ।

पत्नी : हाँ और क्या ? मैं भी चूल्हा चौका देखूँ । (दोनों जाने लगते हैं ।)

महेन्द्र : किन्तु मैं तो आपको और ही कुछ बात कहने आया हूँ । मैं...मैंने.....।

उमापति : तुम्हारी तबियत कुछ खराब है क्या ? डाक्टर को बुलाऊँ । चन्ना देख, डाक्टर को तो बुलाला । जा दौड़ जा । तब तक तुम यहाँ खाट पर लेटो । अजी सुनती हो । महेन्द्र की कुछ तबियत खराब मालूम होती है । मैंने डाक्टर को बुलाया ह ।

पत्नी : (दौड़ती हुई) तबियत, तबियत हो इनके दुश्मनों की खराब, मैं यह नहीं मानती । हाँ नहीं तो, तुम्हारी तो आदत है । लोगों को वैसे ही बीमार बनाते रहने हो । उम गोविन्द को भी आये दिन डाक्टर को दिखाने को कहा करते थे । नट्टी भैया, क्या नाम है तुम्हारा... खैर । नाम तो मैं फिर भा जान लूंगी । मैं अभी जाती हूँ चाय वाय का प्रबन्ध करने । भला, तुम क्या कोई गैर हो । जैसा मेरा गोविन्द वैसे ही तुम, सचमुच बड़े भाग है हम गरीबों के, जिनके घर तुम आये ।

महेन्द्र : माँ, मैं बड़ा पापी हूँ ।

उमापति : हैं हैं ऐसा क्यों कहने हो । तुम तो बड़े अच्छे हो । चन्ना, तू दौड़ कर बढ़िया सी ताजी मिठाई ले आ । चाय के साथ के लिये । देख ताजी हो । और देख छगन हलवाई से मेरा नाम लेना — कहना दाबू जी ने बहुत बढ़िया ताजी खोये की मिठाई मँगाई है । उनके यहाँ एक मिलिटरी के बड़े अफसर गोविन्द के दोस्त आये हैं ।

चन्ना : बहुत अच्छा मालिक ।

पत्नी : अरे चन्ना, देख जा तो रहा ही है मुरजिया कहारिन को भी बुलाता लय्यो । कहिये । आज मेहमान आये हैं दिनभर काम करना होगा । जा, में जाऊँ चौका चून्हा देखूँ । क्या बताऊँ मना करने पर भी बहू काम करने से बाज नहीं आती, मुझे पत्ता नहीं तोड़ने देती ।

उमापति : क्यों क्या बात है उसकी तबियत तो ठीक है न ?

पत्नी : कल से सिर में दर्द है । मैने देखा उदास बैठी थी । पूछा क्या बात है गी, मेरी बिटिया का चन्दा सा मुँह उतर क्यों रहा है ? पर कोई जवाब नहीं दिया । बहुत पड़ने पर बनाया सिर में दर्द है । रात को दो घण्टे तक सुखिया मिर मसलती रही है । तब जाकर दर्द कुछ कम हुआ । सबेरे से जिद्द कर रही थी माँजी, मैं काम करूँगी आप आगम करे । भला, मैं बैठ सकती थी । बेटी के सिर में दर्द हो और मैं आराम करूँ ? सच मानो तीन बार रात को उठी और उड़ाया । फिर भी जब जी न माना तब धीरे धीरे मिर दबाने लगी । बहू एक दम जाग गई और मेरे पंर पकड़ कर कहने लगी—माँ जी, तुम जाकर सोओ । मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ । मैं क्या करती आकर खाट पर लेट रही । पर तुम जानों नींद थोड़े ही आई, रात भर गोविन्द का ध्यान आता रहा । न जाने मेरा बेटा कैसा होगा ? पर अब इन्हें देखकर और उसका पत्र मुन कर जान मे जान आई ।

उमापति : भैया महेन्द्र, मैं तुम्हागी माँ के मारे बड़ा परेशान हूँ । बहू का मजाल है सिर भी दुख जाय । सारा घर उठा लेगी । पिछले दिनों मैं बीमार पड़ गया, बीमार क्या, ऐसे ही मामूली बुखार आ गया तो रातों नहीं सोई, न खाना, न

पीना, बस, सिरहाने बैठकर मेरे मुंह की तरफ देखने रहना । जब देखो तब आँखों से गंगाजल गिर रहा है । मैं समझा समझाकर हार गया । मिन्नत समाजत की, खुशामद की तब जाकर नहाने धोने के लिये चौथे दिन उठी ।

पत्नी : क्यों झूठ बोलो हो । मामूली बीमारी में पड़े थे ? मामूली बुखार था ? १०४ डिग्री का बुखार, न होश था न बातचीत, भला, ऐसे मे कोई चुप बैठा रहता । और तुम अपनी कहो । मेरे सात बच्चे हुए । आठवाँ यह गोविन्द है । सातों हस्पताल मे हुए । तो ये हस्पताल में धरना दिये बैठे रहते थे । चौबीस घण्टे मे एक बार आदमी आते थे, पर उन्होंने तो हस्पताल से हटने की कसम खाली थी । चौकीदार के पास बैठे रहते और उसे भेज कर हर आधे, पौने घण्टे बाद मेरी खबर लेते । कभी फल, कभी दूध, कभी दवा, डाक्टरनियाँ भी हैरान थी इनके मारे । मैं भी कैसी पागल हूँ । इतनी देर करदी जाऊँ चौका चूल्हा देखूँ न ? (जाती है ।)

उमापति : चन्ना, ओ चन्ना, गया दिखता है । न जाने कैसी मिठाई लावे । मैं खुद जाता हूँ । कुछ नमकीन भी चाहिये । मैं भी कैसा पागल हूँ । क्या करूँ महेन्द्र, बूढ़ा हूँ । याद नही रहती भैया । जाऊँगा, हलवाई की तरफ से होकर बदरीनाथ, रामधन को तुम्हारे आने की खुशी मे एक दावत ही क्यों न रहे । जाऊँ । (चलने लगता है)

महेन्द्र : आप इतना कष्ट क्यों करते है । पिताजी, मैं ..मर जाऊँगा मैं—मुंह दिखाने.....

उमापति : (लौटकर) तुम घबरा क्यों रहे हो । यह तुम्हारा घर है । रहो, मैं अभी आया । (चला जाता है)

महेन्द्र : भयंकर कष्ट है । प्राण निकले जा रहे हैं । ओः मैंने कैसी भूल की । (छाती पर जोर से धूँसा मार कर) दुष्ट पापी, तूने देखा.....ये आदमी नहीं देवता है । न जाने क्यों मेरी इनके सामने जबान रुक जाती है । (भर भर धरसू बहने लगते हैं रोकर) मैं पागल हो जाऊँगा । पागल हो जाऊँगा, (जोर से धूमता हूँ ।) मैंने युद्ध में पचासो आदमी मारे, पचासो का खून किया, किन्तु जब वह दृश्य याद आता है तो प्राण मुँह के बल उबलने लगते हैं । विश्वासों की धज्जियाँ उड़ जाती हैं । मेरी दृढ़ता न जाने कहाँ उड़ जाती है । पानी से बालू रेत की तरह मेरा अहंकार दब जाता है । (मैं बड़ा पापी हूँ ।) न जाने किस घड़ी मैं घेर आया । मैं क्यों नहीं किसी की गोली का शिकार होकर वही मर गया । हाय..बड़ा कष्ट है । किन्तु अब सब कुछ कह दूँगा । सब कुछ कह डालना होगा । मैं कह डालूँगा । चाहे जो कुछ हो । मैं स्वीकार कर लूँगा—मैंने, मुझ पापी ने, मुझ दुष्ट, नीच, कुत्ते ने, तुम्हारे पुत्र की हत्या की है । मैंने हत्या की है । हाय मैं क्या करूँ । कोई भी उपाय नहीं है । इन दोनों देव-ताओं के सामने मेरी जीभ जैसे बाहर नहीं निकलती । (धूम-कर देखता हुआ) नहीं, मैं नहीं कहूँगा । मैं इन दोनों का स्वप्न-संसार भंग नहीं करूँगा । मैं एक पत्र लिख कर यहाँ से भाग जाऊँगा । यही ठीक है । गोविन्द, तुम मेरे न जाने कब के शत्रु निकले । शत्रु-शत्रु, मैं पापी हूँ, मैं हत्यारा हूँ । (जोर से) मैं हत्यारा हूँ । (इसी समय आबाजा सुनकर उमा-पति की पत्नी दौड़ आती है ।)

पत्नी : क्या तुमने मुझे बुलाया भैया ? अरे तुम अभी तक नहाये भी नहीं । तुम इस गुसलखाने में चले जाओ न ? यहाँ साबुन

तोलिया सब कुछ है। ठहरो, मैं धोती लाती हूँ। ठहरो गोविन्द ने अपने आप यह गुसलखाना बनवाया है। उसे तो एक ही काम था पढ़ना, पढ़ना, बस और कुछ नहीं। न किसी से बातचीत न कुछ, मैं घण्टों खड़ी रहकर खाने के लिये कहती तब खाता। हाय, न जाने अब वह कैसे रहता होगा। वहाँ बहू की सखी रमा जो है। बहू कह रही है कि रमा के सामने उन्हें कोई तकलीफ़ न होगी। न जाने अब उसके कपड़े कौन निकालता होगा। मैं ऐसा जानती तो चन्ना को भेज देती। चन्ना को मालूम है कौन चीज़ कहाँ रखी हैं। वही यहाँ भी उसे निकालकर देता था। एक इसका लड़का भी था वही गोविन्द के साथ कालेज के होस्टल में सदा रहा है। पर पिछले दिनों हैजे में—कितना भोला था बेचारा। कहता था 'माँजी, मैं तो भैया की सेवा के लिये पैदा हुआ हूँ। अरे मैं धोती लाऊँ न ! मैं भी कैसी पगली हूँ। कमीज़ तुम उसकी इस सन्दूक में से निकाल लो। लो। तुम कौन दूसरे हो। मैं अभी आई। (चली जाती है, महेन्द्र गोविन्द के सन्दूक से कपड़े निकालने के बजाय गोविन्द की तस्वीरें देखने लगता है।)

महेन्द्र : कितना भोला चेहरा है, कितनी शान्त, भाव-निस्पृह चेष्टा; ज्ञात होता है इस व्यक्ति को किसी वस्तु की भी आकांक्षा नहीं है। कपड़ों की तरफ़ से लापरवाह। कमीज़ के बटन खुले हैं, धोती बेढंगी बँधी है जैसे इसे कोई और ही धोती पहनाता हो। गोविन्द, तुम्हारे रूप को समझने में मैंने कितनी भूल की है। मैंने एक देवता को मार दिया; मैंने प्रकृति द्वारा उत्पन्न एक शुद्ध व्यक्ति की हत्या कर दी; कितना बड़ा पाप किया है मैंने। उससे भी कठिन समस्या

है अब इन निरपराध दो प्राणियों के सामने उनके पुत्र की हत्या का वर्णन करना । इन दोनों की बातचीत से मालूम होता है मानों वात्सल्य, कर्त्तव्य, दायित्व का एक स्नेह-सागर इन दोनों के हृदय में उमड़ रहा हो । मैं कैसे इनके सामने उनके पुत्र की मृत्यु का समाचार दूँ, क्या ये जीवित रह सकेंगे ? क्या यह पुत्र की मृत्यु का समाचार सह सकेंगे ? नहीं यह एक क्षण भी जीवित न रहेंगे । कदाचित् सुनने के साथ ही इनके प्राण पखेरू उड़ जायेंगे । फिर तीन-तीन प्राणियों की हत्या का पाप मेरे ऊपर होगा । अरे, मैं क्या कह रहा हूँ । और उसकी पत्नी...नव विवाहिता पत्नी, उमा रमा की बालपन की सखी, क्या वह जीवित रह सकेगी ! नहीं मुझ से यह कथा नहीं कही जायगी । मुझ से इन प्राणियों की डकराते हुए मृत्यु नहीं देखी जायगी ? यह मैंने गोविन्द को मारते हुए क्यों नहीं सोचा ? क्यों रमा ने उस समय मुझे नहीं बताया कि गोविन्द निरपराध है ? क्यों नहीं मैंने यह पाप करने से पूर्व ही यह सब सोच लिया । ओह, यह कितना प्राणघाती संघर्ष मेरे हृदय में उठ रहा है । मानों बल्लियों मानस उद्‌वेलन मेरे प्राणों के मुख को पी जाने को आतुर है ! मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ । 'क्या सोचूँ ।' गोविन्द की हत्या मेरे न जाने कौन से पापों का फल बनकर मेरे हृदय को, मेरे प्राण को, मेरे रोम-रोम को ग्रस रही है । मैं क्या करूँ । कोई भी उपाय नहीं है । कोई मुक्ति का मार्ग नहीं है । मैं घोर संघर्ष में साँस ले रहा हूँ । हे ईश्वर, आज ईश्वर की याद आ रही है । (पत्नी आती है)

पत्नी : लो बेटा लो, यह धोती लो । न जाने कहाँ रखदी थी

उन्होंने । इतनी देर हो गई । बस, चाय तैयार है । जाओ ।
(गुलखाने में चला जाता है । उमा आ जाती है) ।

उमा : माँ जी, यह कौन हैं कहाँ से आये हैं ?

पत्नी : तू नहीं जानती बेटी, यह तेरी सखी रमा का भाई है ।

(उमापति का प्रवेश)

उमापति : मैं आगया ! करो अब चाय की तैयारी । आज शाम को दावत है !

पत्नी : बस, चाय भी तैयार है ।

तीसरा दृश्य

उसी कमरे में केप्टन महेन्द्र गुमसुम बैठा है । कभी-कभी उठकर गोविन्द की तस्वीरों को देखता है, कभी बेचैनी से टहलने लगता है । कभी लम्बी साँस लेकर काँपने-सा लगता है जैसे स्पष्ट देख रहा हो । कभी-कभी उसकी चेष्टायें बिलकुल पागल की सी हो जाती हैं उसे उस कमरे की प्रत्येक वस्तु गोविन्दमय दिखाई देती है जैसे यह उन चीजों में से निकलकर उसके सामने आगे पीछे, ऊपर, नीचे, बायें-बायें घूम रहा हो । और 'महेन्द्र महेन्द्र' कहकर उसका तिरस्कार कर रहा हो । कह रहा हो 'देखो, तुम्हें कितना भ्रम हुआ है । मैं कितना निरपराध हूँ । मेरे माता पिता को देखो—वे कितना तुम्हें स्नेह करते हैं । और एक तुम हो जिसने निरपराध एक व्यक्ति की हत्या कर दी । केवल भ्रम में, केवल सेना में नौकरी करने की अनैतिक बहादुरी के जोश में आकर ।'

वस्तुतः महेन्द्र के मस्तिष्क में घूमने वाले सब विचार रह रहकर बाहर दिखाई देते हैं । उनसे कभी वह डर जाता

है, और ज़रा से शब्द से चौंक उठता है। यही उसकी चेष्टा वेर तक उस कमरे में रहती है। उस कमरे में चिड़ियों ने ऊपर वेंटिलेशन में एक घोंसला बना लिया है उसमें दो चिड़ियाँ उड़कर कभी बाहर जाती हैं कभी भीतर उड़कर घोंसले की ओर दौड़ती हैं। वह उनकी गति से भी भयभीत है। इसी समय कुर्सी पर बैठे एक हाथ मेज़ पर रखी किताब पर पड़ जाता है किताब ज़मीन पर गिर जाती है, वह चौंक उठता है—संध्यासमय—

महेन्द्र : यह किसने पुस्तक गिरा दी ! यह कैसे गिरी ? (वह उधर ही देखता रहता है। फिर वहाँ से हटते ही मेज़ की एक कील में उसकी धोती फँस जाती है वह झटके से फटती है) हैं, यह क्या ? यह मैं क्या देख रहा हूँ। यह क्या हो रहा है। मेरी धोती किसने खींच ली। गोविन्द का भूत मुझे घेर रहा है। (इसी समय बाहर से किसी के ज़ोर से हँसने की आवाज़ सुनाई देती है) अरे यह क्या, यह कौन हँसा ? क्या गोविन्द, गोविन्द, गोविन्द, हटो सामने से हटो। मैं गोली मार दूंगा। (रिवाल्वर निकाल लेता है। इसी समय धीरे-धीरे उमा प्रवेश करती है ! अठारह उन्नीस वर्ष की सुन्दरी। धारीदार लाल काले रंग की साड़ी पहने, बंसी बौडिस, पंर में सफ़ेद चप्पल, गौर बर्राँ, सुडौल शरीर। वह आकर विस्मित-सी खड़ी हो जाती है। नमस्कार करना भूल महेन्द्र की चेष्टा देखकर कुछ भयभीत-सी होती है। महेन्द्र जो अपने विचारों में तल्लीन होकर आत्मसंघर्ष कर रहा था धीरे-धीरे उसे देखता है, देखता ही रहता है।) तुम, तुम...

उमा : नमस्कार करती हूँ।

महेन्द्र : नमस्कार ! नमस्कार कैसा ! तुम कौन हो ! क्या तुम्हारा भी गोविन्द से कुछ सम्बन्ध है ?

उमा : मैं उनकी पत्नी हूँ । क्या आपको कोई आन्तरिक कष्ट है ?

महेन्द्र : (गौर से उसकी ओर देखता रहता हूँ) गोविन्द की पत्नी, उमा, रमा की स्-सखी ।

उमा : हाँ, क्या मैं जान सकती हूँ आप इतने व्यग्र इतने व्याकुल क्यों हैं ? जब से आप आये हैं तब से आप बेचैन हैं, कुछ कहना चाहते हैं, पर.....।

महेन्द्र : हाँ, कह नहीं पाता । (जोर से) कोई मेरी ज़बान पकड़ लेता है । मैं विवश हो जाता हूँ ।

उमा : तो आप कहना क्या चाहते हैं । कदाचित् मेरे सास समुर के सामने आप बोल नहीं पाते । मैंने आपकी दशा पर्व के पीछे खड़े होकर देखी है, कई बार देखी है, इसी से मैं आई हूँ वैसे भी आप मेरी सखी रमा के भाई हैं तो मेरे भी भाई हुए ।

महेन्द्र : नहीं, मैं रमा का भाई नहीं हूँ, मैं तुम्हारा भाई भी नहीं हूँ, मैं हत्यारा हूँ । मैंने घोर पाप किया है । मैं उसी की जलन में मर रहा हूँ । मेरा जीवन भस्म हुआ जा रहा है । मुझे कोई नहीं बचा सकता !

उमा : आपने क्या पाप किया है । यदि मैं आपकी सहायता कर सकूँ !

महेन्द्र : तुम मेरी कोई सहायता नहीं कर सकतीं उमादेवी ! कोई भी मेरी सहायता नहीं कर सकता । मैं इसी तरह घुट-घुटकर मरूँगा । मैं मरना चाहता हूँ ।

उमा : कुछ कहिये भी तो ? बिना कहे मैं जान भी क्या सकती हूँ ।

महेन्द्र : (अपने आप) कुछ कहिये भी तो, क्या कह दूँ ? कह दूँ । सब कुछ सामने है । स्पष्ट बिलकुल स्पष्ट । (चैतन्य होकर) क्या तुम सुन सकोगी ? नहीं, तुम नहीं सुन सकती ! किन्तु मैं कहे बिना जी नहीं सकता । मैं कह डालने के लिये ही तो आया हूँ । मैं कहने के लिये आया हूँ । मैं कहूँगा । नारी,

नारी तू सुनने के लिये तैयार होजा ! आकाश गग्न रहा है, बिजली गिर रही है, तारे एक-एक करके टूट रहे हैं । प्रलय हो रही है प्रलय, तुम सुनोगी ! सुनो.....

उमा : यह तुम क्या कह रहे हो । मेरा हृदय फटा जा रहा है । क्या मेरे पति के सम्बन्ध में कोई बात है !

महेन्द्र : (नीचे देखता हुआ) हाँ, तुम्हारे पति के सम्बन्ध में, गोविन्द के सम्बन्ध में बात है । मैंने उसकी हत्या कर दी है !

उमा : (आगे बढ़कर) क्या कहा, हत्या ? ? ?

महेन्द्र : हाँ, मैंने उसकी हत्या कर दी है ! मैंने उसे अपनी बहन के साथ हँसते देखा था । मैं उसे शिकार पर ले गया ! वहाँ मचान से गिरा दिया । शेर उसे खा गया ।

उमा : हत्या, ...हत्या...कर दी... (बेहोश-सी हो जाती है) हाय...

महेन्द्र : तुम मुझे दण्ड दो उमा, दण्ड दो, मैं सब कुछ सहने के लिये तैयार हूँ । मैं यही कहकर शान्ति से मरने आया हूँ । मेरे रोम-रोम से आग की लपटे निकल रही हैं ।

उमा : वह तुम्हारी बहन से हँसी करते थे ?

महेन्द्र : नहीं, नहीं यह झूठ है । मुझे भ्रम हुआ । परन्तु मेरा भ्रम उस समय दूर हुआ जब मैंने उसकी हत्या कर दी । वह निरपराध था । मुझे दण्ड दो । मैं दण्ड सहने के लिये आया हूँ ।

उमा : (बहुत देर चुप-सी रहकर) तुम अब दण्ड सहने के लिये आये हो मेरे निरपराध पति की हत्या करके ! मेरा सर्वनाश करके, मेरा सौभाग्य सिन्दूर पौछ कर; नारकी, पापी, हत्यारे, तुम वही गोली मारकर क्यों नहीं मर गये । आह.....

महेन्द्र : मैं तुम्हारे सामने अपराध स्वीकार किये बिना शान्ति से नहीं मर सकता था उमादेवी ! अब मैं कठोर से कठोरतर दण्ड सहने के लिये तैयार हूँ । मुझे दण्ड दो । यह रिवाजवर पडा

है। मुझे मार दो। मैं जल रहा हूँ, पश्चात्ताप की अग्नि से तिलतिल करके जल रहा हूँ। मुझे दिखाई दे रहा है कि मुझे दूसरे लोक में भी शान्ति नहीं मिल सकेगी। मुझे दण्ड दो। मेरे हृदय की अग्नि से उठे हुए स्फूर्लिंगों से मेरा सारा धैर्य, शान्ति, विवेक जल रहे हैं। मेरी आँखों में नरक कुण्ड का धूम छा गया है। मेरी श्वास में भट्टी की भभक है। मुझे दण्ड दो। (आगे बढ़ता है) मुझे अपनी छाया से भी घृणा है उमादेवी !

उमा : दूर रहो दूर रहो नरक के कीड़े। दूसरों का स्वर्ग उजाड़ कर केवल भ्रम का पोषण करने वाले अज्ञान के कीट, दूर रहो। तुम्हें क्या अधिकार था, सैनिक दर्प में नग्न-मूर्खता, अविवेक को पालकर पश्चात्ताप की तिलतिल करके दहकती आग में जलने वाले, तुमने मेरा स्पष्ट, मेरा मारा सुख, मेरे विश्वासों पर खड़ी हिमालय-सी ऊँची कल्पना सी भव्य, शरदाकाश-सी निरभ्र सुन्दर प्रासादिनी को बनते-बनते ढहा दिया आह...

महेन्द्र : देवि, मैं उस प्रासादिनी के खण्डहर में केवल अपना...अपना रुधिर तर्पण करने आया हूँ। तुम मुझे दण्ड दो। जिससे मैं शतशत जीवित नरक के अग्नि दाह से एक बार ही छुट्टी पा जाऊँ। जो चाहो करो, यदि तुम मेरी बोटी-बोटी कटवाकर कुत्तों को खिला दोगी तो भी मैं प्रसन्नता से स्वीकार करूँगा। पाप से उन्मत्त हो सकूँगा। ओः कितनी आग है मुझ में, कितना दाह मेरे प्राणों में, कितनी जलन है मेरे रोम-रोम में। जैसे सारे संसार में पापाग्नि की बाढ़ आगई हो।

उमा : (क्रोध से पागल-सी) मैं कौन होती हूँ तुम्हें मारने वाली। तुम...तुम कुत्ते की मौत मरो पापी, नीच। मैं पुलिस को बुलाती हूँ। पुलिस-पुलिस। वही तुम्हें दण्ड देगी। आह... (धम्म से जमीन पर गिर पड़ती है। इसी समय उमापति की

पत्नी आती है) नहीं अब नहीं सहा जाना, अब क्या हो सकता है। तुम्हारा दोष नहीं, मेरे भाग्य का दोष है।

पत्नी . क्या है क्या है, अरे, (बहू की जमीन पर बेहोश देखकर)
यह क्या किया तुमने—...। बोलो.....।

महेन्द्र (उसी दशा में) मैंने गोविन्द की हत्या कर दी माँ, यही कहने आया हूँ माँ, यही कहने आया हूँ।

पत्नी (वज्रपात की तरह समाचार सुनकर) गो...गो...गोविन्द .।
(वहीं गिर पड़ती है। इसी समय उमापति हाथ में मिठाई की टोकरी लिये आते है)

उमापति क्या ? (समाचार सुनते ही मिठाई की टोकरी हाथ से छूट जाती है बहुत देर तक स्तब्ध चुप खड़े रहते हैं)।

महेन्द्र यही कहने मैं आया था बाबू जी, मैंने भ्रम से निरपराध गोविन्द की हत्या कर दी। मुझे दण्ड दीजिये मैं सहने को तैयार हूँ। मैं पापी हूँ हत्यारा हूँ। मैं सबेरे से यही कहना चाहता था। मैं तिलतिल करके पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूँ। आप मुझे दण्ड दीजिये। दण्ड दीजिये। मैं आपके पैरों पर गिरकर वज्रदण्ड पात की भिक्षा माँगता हूँ। (पैरों पर गिरकर उमापति की तरफ देखता है। उमापति की आँखों से आँसुओं की धार बहने लगती है। किन्तु पर्वत की तरह दृढ़ता से देर स्तब्ध रहकर)

उमापति दण्ड दूँ ! दण्ड, क्या दण्ड हो सकता है ? तुम मेरे दूसरे गोविन्द हो नटखट लड़के, तुम मेरे दूसरे गोविन्द हो। उठो। (हाथ पकड़कर उठाते हैं)।

महेन्द्र . क्या S S S ?



तौलिये
श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क'

पात्र

वसन्त

मधु

सुरो

चिन्ती

मंगला

स्थान —नई दिल्ली

[पर्दा वसन्त के ड्राइङ्ग-रूम में उठता है। ड्राइङ्ग-रूम न बहुत बड़ा है, न छोटा। न सामान से अधिक भरा है, न बिल्कुल खाली। वसन्त एक फर्म में मैनेजर है। अढ़ाई सौ वेतन पाता है। दिल्ली में अढ़ाई सौ अधिक महत्व नहीं रखते, पर वह फर्म का मैनेजर है, इसलिए कमरा सजा है और दरवाजों पर पर्दे लगे हैं। दायाँ दीवार के साथ मेज़ लगी है, उस पर कागज़-पत्रों के अतिरिक्त टेलीफ़ोन भी रखा है।

मेज़ के इधर एक दरवाजा है, जो अन्दर कमरे में जाता है। मेज़ के उस ओर कोने में एक अँगोठी है, किंतु आग शायद इसमें नहीं जलती, क्योंकि अँगोठी का कपड़ा अत्यन्त सुंदर है, उस पर सजावट की चीजें भी रखी हुई हैं वंसी ही जैसी मध्यवर्गीय घरों में होती हैं—लेकिन वे बिखरी नहीं है, करीने से लगी हुई है। दो पीतल के फूलदान दूसरी वस्तुओं के अतिरिक्त अँगोठी के दोनों कोनों पर रखे हुए हैं। इसी अँगोठी के कपड़े की लम्बी भालर को छूता हुआ रेडियो-सेट नीचे एक छोटी-सी मेज़ पर रखा है, जिसके मेज़पोश का डिज़ाइन अँगोठी के कपड़े से मंच करता है और मधु की सुहचि का पता देता है।

अँगोठी के ऊपर दीवार पर एक कैलेंडर ऐसे लटक रहा है कि मेज़ पर बंटे हुए व्यक्ति के ऐन सामने पड़े। कैलेंडर को एक नज़र देखने से मालूम होता है कि १९४३ के नवम्बर का महीना है। अँगोठी के बराबर सामने दीवार में एक दरवाजा है जो रसोई-घर को जाता है।

इस दरवाजे से ज़रा हटकर सामने की दीवार के साथ एक बेंच के कौच का सेट है। इसके आगे एक तिपाई पड़ी है। सेट की गद्दियाँ सुंदर

और सुरुचिपूर्ण हैं और तिपाई का कवर अंगीठी के कपड़े से मँच करता है ।

सामने, दीवार की बायीं ओर, सोफ़ा-सेट से ज़रा हटकर, एक दरवाज़ा है जो स्नानगृह को जाता है ।

बायीं दीवार के साथ शृंगार की मेज़ लगी है जिससे वसन्त और मधु दोनों अपने टायलेट का काम ले लेते हैं । इसके ऊपर खूंटियों पर तौलिये ढंगे हैं । मेज़ के दोनों ओर एक-दो कुर्सियाँ पड़ी हैं । बायीं दीवार में इधर को एक दरवाज़ा है जो बाहर को जाता है ।

पर्दा उठते समय हम वसन्त को शृंगार की मेज़ पर बैठे हजामत बनाते देखते हैं । वास्तव में वह हजामत बना चुका है और तौलिये से मुँह पोंछ रहा है । तभी रसोई-घर से स्वेटर बुनती हुई मधु प्रवेश करती है ।]

मधु : यह फिर आपने मदन का तौलिया उठा लिया । मैं कहती हूँ आप.....

वसन्त : (मुँह पोंछते-पोंछते रुककर) ओह ! ये कम्बख्त तौलिये ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता । बात यह है (हँसता है) कि मदन के तौलिये छोटे हैं और हजामत.....

मधु : (चिढ़कर) और हजामत के तौलियों जैसे हैं । जी ? ज़रा आँख खोलकर देखिए हजामत के तौलिये कितने रंगीन है, बीसियों तो धारियाँ पड़ी हुई हैं उनमें, और मदन के कितने सादे और.....

वसन्त : लेकिन रोएँदार तो...

मधु : (व्यंग्य से) दोनों हैं । जी ! आँखें बन्द करके आदमी दोनों का अन्तर बता सकता है, मैं कहती हूँ...

वसन्त : (निरुत्तर होकर) वास्तव में मेरा ध्यान दूसरी ओर था ।
लाओ, मुझे हजामत का तौलिया दे दो । कहाँ है ? मुझे
दिखायी ही नहीं दिया ।

मधु : (खूँटी पर टँगा हुआ तौलिया उठाकर) यह तो टँगा है
सामने, फिर भी.....

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो
हमारी दुनिया.....

(खिसियानी हँसी हँसता है)

मधु : जी, आपकी दुनिया ! जाने आप किस दुनिया में रहते हैं ।
अब तो ऐनक नहीं । ऐनक हो तो कौन-सा आपको कुछ
दिखाई देता है ।

[मुँह फुलाकर धम से कौच में धँस जाती है और चुपचाप
स्वेटर बुनने लगती है । वसन्त हजामत का सामान रखता
है फिर अचानक उसकी ओर देखकर :]

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह फुला लिया । नाराज हो गई हो ?

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नहीं, मैं नाराज नहीं ।

वसन्त : तुम्हारा ख्याल है कि मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान
सकता ?

मधु : (उसी तरह हँसकर) मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त : (सामान वैसे ही छोड़कर कुर्सी को उसकी ओर घुमाते हुए)
मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि अपने भावों को छिपा लेना
तुम्हारे बस की बात नहीं । तुम्हारी उपेक्षा, तुम्हारा क्रोध,
तुम्हारी समस्त भावनाएँ तुम्हारी आकृति पर प्रतिबिम्बित
हो जाती हैं । तुम्हें मेरी आदतें बुरी लगती हैं, पर मैंने तुम्हें

अंधेरे में नहीं रखा। अपने सम्बन्ध में, अपने स्वभाव के सम्बन्ध में, सब कुछ बता दिया था। मैंने अपने सब पत्ते...

मधु : मेज़ पर रख दिये थे। (उसी तरह व्यंग्य से हँसकर) मैं कब इन्कार करती हूँ ?

वसन्त : तुम्हारी यह हँसी कितनी विषैली है ! इसी तरह विष घोल-घोल कर तुमने अपने स्वास्थ्य का सत्यानाश कर लिया है।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : मैं तुम्हें किस प्रकार विश्वास दिलाऊँ कि मैं स्वयं सफ़ाई का बड़ा भारी समर्थक हूँ।

मधु : (हँसती है) इसमें क्या सन्देह है !

वसन्त : और मुझे स्वयं गन्दगी पसन्द नहीं।

मधु : (सिर्फ हँसती है)

वसन्त : पर मैं तुम्हारी तरह 'एरिस्टोक्रैटिक' (Aristocratic) वातावरण में नहीं पला और मुझे नज़ाकते नहीं आतीं। हमारे घर में सिर्फ एक तौलिया होता था और हम छहों भाई उसे काम में लाते थे।

मधु : आप मुझे 'एरिस्टोक्रैट' कहकर मेरा उपहास करते हैं। मैं कब कहती हूँ, दस दस तौलिय हों।

वसन्त : दस और किम तरह होते हैं ? नहाने का अलग, हजामत बनाने का अलग, हाथ मुँह पोछने का अलग और फिर तुम्हारे और मदन के।

मधु : (पहलू बदलकर) लेकिन मैं पूछती हूँ, इसमें दोष क्या है ? जब हम खरीद सकते हैं तो क्यों न दस-दस तौलिये रखें। कल, परमात्मा न करे, हम इस योग्य न रहे तो मैं आपको

दिखा दूँ कि किस तरह गरीबी में भी सफ़ाई रखी जा सकती है। तौलिये न सही, खादी के अँगोछे सही, कोई पुरानी-धुरानी पर उजली चादर या धोती के टुकड़े सही—कुछ भी रखा जा सकता है। लेकिन जिस तौलिये से किसी दूसरे ने बदन पोंछा हो, उससे किस प्रकार कोई अपना शरीर पोंछ सकता है ?

वसन्त : मैं कहता हूँ, हम छः भाई एक ही तौलिये से बदन पोंछते रहे।

मधु : लेकिन बीमारी... ..

वसन्त : हममें से किसी को कभी बीमारी नहीं हुई।

मधु : लेकिन रिकन की बीमारी.

वसन्त : तुम्हें और मदन को तो कोई बीमारी नहीं,.....और फिर रोग इस तरह नहीं बढ़ता। रोग बढ़ता है कमजोरी से ! जब हमारे शरीर में रोग से लोहा लेने वाले लाल कीटाणु कम हो जाते हैं, तब ! 'चूहा सैदनशाह' की बात जानती हो ?

मधु : चूहा सैदनशाह.....?

वसन्त : शिकार करने के विचार से कुछ अफ़मर चूहा सैदनशाह गये। उनमें अमरीका के 'राकफ़ैलर-ट्रस्ट' के कुछ डाक्टर भी थे। लंच के समय उन्हें पानी की आवश्यकता पड़ी। बैरे ने आकर बताया कि गाँव में कोई कुआँ नहीं, लोग जौहड़ का पानी पीते हैं। डाक्टरों को विश्वास न आया। क्योंकि जौहड़ का पानी मैला चीकट था। ऐसी कोई ही बीमारी होगी, जिसके कीड़े उस पानी में न हों और चूहा सैदनशाह के जाट हृष्ट-पुष्ट, लम्बे-तडंगे.....

मधु : तो क्या आप चाहते हैं, हम जौहड़ का पानी पीना शुरू कर दें ?

(हँसती है)

वसन्त : (उठकर कमरे में घूमता हुआ) तुम इस बात पर अपनी विषाक्त हँसी बिखेर सकती हो (उसके सामने रुककर) लेकिन तुम्हें मालूम हो कि अमरीका के डाक्टर वहीं रहे । एक जाट के रक्त का उन्होंने विश्लेषण किया । मालूम हुआ कि उसमें रोग का मुकाबिला करने वाले लाल कीटाणु, रोग की मदद करने वाले सफ़ेद कीटाणुओं से, कहीं अधिक संख्या में हैं । तब उन्होंने वहाँ के लागों की खुराक का निरीक्षण किया । पता चला कि वे अधिकतर दही और लस्सी का प्रयोग करते हैं और दही में बहुत-सी बीमारियों के कीड़ों को मारने की शक्ति है । बीमारी का मुकाबिला इन नज़ाकतों और नफ़ासतों से नहीं होता, बल्कि शरीर में ऐसी शक्ति पैदा करने से होता है, जो रोग के आक्रमण का प्रतिरोध कर सके ।

(फिर घूमने लगता है)

मधु : मैंने चूहा सैदनशाह की बात सुन ली । मैंले तौलिये से शरीर में लाल कीड़े फैले या सफ़ेद, मुझे इससे मतलब नहीं । मैं तो इतना जानती हूँ कि बचपन ही से मुझे सफ़ाई पसन्द है । मामा जी.....

वसन्त : (मेज़ के कोने का सहारा लेकर) तुमने फिर अपने मामा और मौसी की कथा छेड़ी । माना कि वे विलायत हो आये हैं, किन्तु इसका यह मतलब तो नहीं कि जो वे कहते हैं, वह वेदवाक्य है । उस दिन तुम्हारे मौसा आये थे । उन्होंने हाथ धोये तो मैंने कहीं भूले से तौलिया पेश कर दिया । (मधु के पास आकर) उन्होंने दाँत निपोर दिये (नकल उतारते हुए)

‘मैं किसी दूसरे के तौलिये से हाथ नहीं पोंछता’—और वे अपने रूमाल से हाथ पोंछने लगे । मैं पूछता हूँ अगर वे उस तौलिये से हाथ पोछ लेने-तो उन्हें कौन-सी बीमारी चिमट जानी ?

मधु : अब यह तो.....

वसन्त : और तुम्हारे मामाजी (वापस जाकर फिर मेज पर बैठ जाता है) तुम्हारे जाने के बाद एक दिन मैं उनके यहाँ गया । रात वही रहा । दूसरे दिन मुझे भीघे दफनर आना था । कहने लगे—‘हजामत यही बना लो ।’ ‘मैं एक दिन छोड़कर हजामत बनाता हूँ, मुझे कोई ऐसी जरूरत नहीं’ । जब उन्होंने अनुरोध किया तो मैंने कहा—‘अच्छा, बनाये लेता हूँ !’ तब वे एक निकृष्ट-सा रेजर ले आये और कहने लगे (नकल उतारते हुए)—‘मैं अपने रेजर से किसी दूसरे को हजामत नहीं बनाने देता, इसीलिए मैंने मेहमानों के लिए दूसरा रेजर रख छोड़ा है’ - क्रोध के मारे मेरा रक्त खीन उठा, लेकिन अपने आपको रोककर मैंने केवल इतना कहा—‘रहने दीजिए, मैं घर जाकर शेव कर लूँगा ।’

मधु : मामा जी.....

वसन्त : (अपनी बात जारी रखते हुए) इस बात पर शायद उन्हें महसूस हुआ कि मुझे उनकी बात बुरी लगी और उन्होंने मुझे अपने ही रेजर से हजामत बनाने पर विवश कर दिया । किन्तु मेरे हजामत बनाने के बाद मेरे ही सामने बनेड उन्होंने लॉन में फेंक दिया और नौकर से कहा कि रेजर को Sterilise * कर लाये (नकल उतारते हुए) मामा जी...

*Sterilise : उबलते पानी में डालकर किसी चीज को बीमारी के कीटाणुओं से मुक्त करना ।

मधु : मैं कहती हूँ, आप उनके स्वभाव से परिचित नहीं, आप को बुरा लगा। स्वच्छता और सुरुचि की भावना भी काव्य और कला ही की भाँति.....

वसन्त : (आवेग से उसके पास आकर) क्यों काव्य और कला को अपनी इस घृणा में घसीटती हो। तुम्हारे ऐसे वातावरण में पले हुए सब लोगों की सुरुचि में घृणा की भावना काम करती है—शरीर से, गन्दगी से, जीवन से घृणा की !

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और मुझे जीवन से घृणा नहीं। मुझे शरीर से भी घृणा नहीं और मैं सच कह दूँ, मुझे गन्दगी से भी घृणा नहीं।

मधु : (हँसती है) तो फिर कूड़े के ढेरों पर बैठिये !

[वसन्त फिर कुर्सी पर जा बैठता है, और कुर्सी को और समीप ले आता है]

वसन्त : मुझे गंदगी से घृणा नहीं, किन्तु मैं गंदगी पसन्द नहीं करता—बड़ा सूक्ष्म-सा अन्तर है। यदि हमें जीवन का सामना करना है तो रोज़ गंदगी से दो-चार होना पड़ेगा। फिर इससे घृणा कैसी ? जिन गरीबों को तुम अपने बरामदे के फर्श पर भी पाँव न रखने दो, मैं उनके पास घंटों बैठ सकता हूँ।

मधु : (हँसती है)

वसन्त : और मैंने ऐसे गंदे इलाकों में जीवन के निरन्तर कई वर्ष बिताये हैं, जहाँ तुम्हारी सुरुचि की सनक तुम्हें गुज़रने तक न दे। समझीं !

मधु : (वहीं बैठे और वैसे ही स्वेटर बुनते हुए) पर अब तो आप गरीब नहीं। अब तो आप गंदे इलाकों में नहीं रहते। गरीबी

की विवशता को मैं समझ सकती हूँ, किन्तु गन्देपन का स्वभाव मेरी समझ से दूर की चीज है ।

वसन्त तो तुम्हारे विचार में मैं स्वभाव से गन्दा हूँ ।

मधु . (उसी विषेली हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ ।

वसन्त : (खड़ा हो जाता है) ऐसे दिन मुझ पर आये हैं, जब एक बनियाइन पहने मुझे कई-कई दिन गुजर जाते थे । उसे धोने तक का अवकाश न मिलता था और अब मैं दिन में दो-दो बार बनियाइन बदल लेता हूँ । यदि यह गन्देपन की आदत है तो...

मधु (उसी हँसी के साथ) मैं कब कहती हूँ ?

वसन्त स्वच्छता बुरी नहीं, न मरुचि बुरी है, पर तुम हर चीज को मनक की हद तक पहुँचा देती हो, और सनक से मुझे चिढ़ है । (फिर कमरे में घूमने लगता है) बनियाइनों और तौलियों की कंद मंन मान ली, किन्तु यदि मैं गलती से बनियाइन न बदल पाऊँ, या गदन तौलिया न लूँ तो इसका यह मतलब तो नहीं कि मैं स्वभाव से गन्दा हूँ और मेरा इस स्वभाव पर तुम्हें मुह फुलाकर बैठ जाना या अपनी विषेनी हँसी बखेरना चाहिए ।

मधु (चुप रहती है)

वसन्त (रेडियो के पास से) तुमने अपने आपको इन झूठे बन्धनों में इतना जकड़ लिया है कि मेरा जरा-सा खुलापन भी तुम्हें अखरता है । अपने सिद्धान्तों को तुमने सनक की हद तक पहुँचा दिया है । ऊषी और निम्मो.....

मधु : (बुनना छोड़ देती है) आपने फिर ऊषी और निम्मो की बात चलायी । ऊषी और निम्मो.....

वसन्त : (हँसते हुए) कल मिल गई बाज़ार में । मैंने पूछा — निम्नो आयी नहीं तुम इतने दिनों से ? कहने लगी — हमको चची से डर लगता है ।

(हँसता है)

मधु : (उसी झिंझली हँसी के साथ) मैं उन्हें खा जो जाती हूँ ।

वसन्त : (तिपाई के पास से) खाओगी तो तुम क्या, पर वे बच्चियाँ है.....

मधु : बच्चियाँ !

(व्यंग्य से मुँह बिचकाती हुई हँसती है)

वसन्त : (उसके व्यंग्य को सुना-अनुसुना करके तिपाई पर बैठते हुए) हँसना उनका स्वभाव है । वे हँसेंगी तो बेबात की बात पर हमेगी और तुम्हारी 'सुरुचि' और 'मस्कृति' — बस दबे-दबे घुटे-घुटे फिरो, ऊँह ! (बेजारी से सिर हिलाकर उठता है) जो आदमी जी भर खा-पी नहीं सकता; हँस-हँसा नहीं सकता वह जीवन में कर ही क्या सकता है ? दुख और मुसीबतों के बन्धन ही क्या कम है जो जिदगी को शिष्टाचार की बेडियों से जकड़ दिया जाये — यह न करो, वह न करो; ऐसे न बोलो; यों न बैठो वो न बैठो — इन वर्जनाओं का कही अन्त भी है ।

मधु : (चुप रहती है)

वसन्त : और फिर तुम्हारे इस शिष्टाचार में वह स्निग्धता कहाँ है ? तुम्हारे आने से पहले मैं, देव और नारायण एक ही लिहाफ में बैठ जाते थे । जरा कल्पना तो करो — सर्दियों की सुबह या शाम, एक ही चारपाई पर, एक ही रजाई घुटनों पर ओढ़े, चार-पाँच मित्र बैठे हैं । गप्पें चल रही हैं । सुख-दुःख

की बातें हो रही है। वही चाय आ जाती है। साथ साथ बातें होती हैं, साथ-साथ चुस्कियाँ लगती हैं—इस कल्पना में कितना आनन्द है, कितनी स्निग्धता है। अब मित्र आते हैं, अलग-अलग कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। एक दूसरे पर बोझ मालूम होना है। (जोश से) चिड़िया तक तो फटकने नहीं देती तुम बिस्तर के पास। मैं तो इस तकल्लुफ में घुटा जाता हूँ

[जाकर कुर्सों पर बैठ जाता हूँ और हजामत का सामान ठीक से रखते लगता हूँ]

मधु : मैं तकल्लुफ स्वयं पसन्द नहीं करती। पर जब दूसरों को सफाई का कुछ भी ख्याल न हो तो विवश हो इससे काम लेना पड़ता है। आप ही बताइए—कितने लोग हैं, जिन्हें सफाई की आदत है? कितने हैं जो हमारी तरह पाँव धोकर रजाई में बैठते हैं?

वसन्त : (यहाँ से) पाँव धोने की मृमीबत रजाई में बैठने का लुत्फ ही किरकिरा कर देती है।

मधु : कुत्ता भी बैठता है तो दुम हिलाकर बैठता है। आदमी स्वभाव ही से सफाई-पसन्द है। मुझे गन्दे लोगों से सरत घृणा है।

(फिर स्वेटर बुनने लगती हूँ)

वसन्त : (मुड़कर) घृणा-घृणा-घृणा—यही तो मैं कहता हूँ। तुम्हें मुझसे घृणा है, मेरे स्वभाव से घृणा है, मेरे मित्रों से घृणा है। तुम्हारा वातावरण मेरे वातावरण से घृणा करता है।

मधु : (उसी विषय की हँसी के साथ) यह आप कह सकते हैं।

वसन्त : तुम्हें मेरी हर एक बात से घृणा है—मेरे खाने-पीने से,

उठने-बैठने से, हँसने-बोलने से — मैं जब हँसता हूँ, जी खोल-कर हँसता हूँ और इसीलिए ऊषी और निम्मो...

मधु : (स्वेटर को फेंककर) आपने फिर ऊषी और निम्मो की कथा छेड़ी। मुझे हँसना बुरा नहीं लगता। पर समय-कुसम का भी ध्यान होना चाहिए। उस दिन पार्टी में आते ही ऊषी ने मेरे कान पर चुटकी ले ली और निम्मो ने मेरी आँख बन्द कर ली। कोई समय था उस तरह हँसी-मज़ाक का। मुझे हँसी-मज़ाक से घृणा नहीं, बदतमीज़ी से घृणा है।

वसन्त : ऊषी.....

मधु : परले सिरों की बदतमीज़ है। मदन की वर्षगांठ के दिन वे सब आये थे। निम्मो इतनी चंचल है; पर वह तो बैठ गयी एक ओर; यह नवाबज़ादी सेंडल समेत आ बैठी मेरे सामने टाँगें पसारें और वे उसके गंदे सेंडल — मेरी साड़ी के बिल्कुल समीप आ गये। आप इस बदतमीज़ी को शौक से पसन्द करें, मैं तो इसे हरगिज़ पसन्द नहीं कर सकती। जिसे बैठने, उठने, बोलने का सलीका नहीं; वह मनुष्य क्या पशु है।

वसन्त : (गरजकर) पशु ! तो तुम मुझे पशु समझती हो ? तुम मनुष्य की सहज भावनाओं को निर्मम वज्रताओं की वेड़ियों में बाँधकर रखना चाहती हो कि उसकी रूह ही मर जाये। मुझे यह सब पसन्द नहीं और इसलिए तुम मुझसे घृणा करती हो। तुम्हारी इस विपाक्त हँसी में, मैं जानता हूँ कितनी घृणा छिपी है और मुझे डर है कि किसी दिन मैं सबमुच पशु न बन जाऊँ। अभी मेरा जी चाहा था कि इस ज़लील से तौलिये को उठाकर बाहर फेंक दूँ और...और...मेरा जी चाहा करता है कि मैं तुम्हारी इस हँसी का गला घोट दूँ।

घृणा—तुम मेरी हर बात से घृणा करती हो—मुझे पशु समझती हो !

मधु : (स्वेटर उठाते हुए, भरे हुए गले से) आप नाहक हर बात को अपनी ओर ले जाते हैं। अपनी कल्पना से मेरे मन में वे बातें देखते हैं, जो मैं स्वप्न में भी नहीं सोचती। मुझे आपसे घृणा है या नहीं, इसे मैं ही जानती हूँ, पर आपको मुझसे जरूर घृणा है। आपने मुझसे शादी कर ली, मैं जानती हूँ। क्यों करली, यह भी जानती हूँ। लेकिन विवाह के लिए आपका तैयार हो जाना, यह नहीं बताता कि आपको मुझसे घृणा नहीं। इसका गुस्सा चाहे अब आप मेरी सुरुचि पर निकाले, या संस्कृति पर, पहनावे पर अथवा स्वभाव पर।

वसन्त : तुम तो

मधु : मेरा ख्याल था, मैं आपको सुख पहुँचा सकूँगी। आपके अव्यवस्थित जीवन को व्यवस्था सिखा दूँगी, किन्तु मैं देखती हूँ कि मेरे सारे प्रयाम विफल हैं.....आपको इस गन्दगी, इस अव्यवस्था में सुख मिलता है। आपको मेरी व्यवस्था, मेरी सफाई बुरी लगती है। मैं आपकी दुनिया में न रहूँगी। मैं आज ही चली जाऊँगी।

[उठ खड़ी होती है—तभी टेलीफोन की घण्टी बजती है।
वसन्त जल्दी से जाकर चोगा उठाता है]

वसन्त : हैलो, हैलो, जी, जी !

मधु : (नौकरानी को आवाज देते हुए) मंगला !

मंगला : (स्नानगृह की ओर के दरवाजे से आती है) जी, बीबी जी !

मधु : मेरा बिस्तर तैयार कर और ट्रंक इस कमरे में ले आ।

मंगला : बीबी जी, आप.....

मधु : मैं जो कहती हूँ, उठा ला ।

[मंगला चली जाती है वसन्त “जी, जी बहुत अच्छा”
कहते हुए चोगा रख देता है और हँसता हुआ आता है]

वसन्त : मैं कहता हूँ तुम अपना सामान बाँधने की सोच रही हो, पहले मेरा सामान तो ठीक कर दो । मुझे पहली गाड़ी से बनारस जाना है । अभी साहब ने आदेश दिया है । अपना सामान बाद में बाँधना ।

(हँसता है । पर्दा तत्काल गिरता है ।)

[कुछ क्षण बाद पर्दा फिर उठता है । कमरा वही है । सामान भी वही है, सिर्फ इतना अन्तर है कि जहाँ मेज़ थी वहाँ एक पलंग बिछा है और टेलीफ़ोन उसके सिरहाने एक तिपाई पर रखा है । मेज़, ड्रेसिंग-टेबल की जगह चला गया है । और शृंगार की मेज़, अपनी कुर्सी के साथ दायें कोने को सरक गई है ।

पलंग पर मधु लिहाफ़ घुटनों पर लिये दीवार के सहारे अन्य-मनस्क-सी आधी लेटी है ।

कुछ क्षण बाद वह कैलेंडर की ओर देखती है । उसकी दृष्टि का अनुसरण करते ही मालूम होता है कि जनवरी का महीना है और नया साल चढ़ गया है । जिसका मतलब यह है कि मधु को हम दो महीने बाद देख रहे हैं ।

बाहर का दरवाज़ा खुला है और तीखी हवा अन्दर आ रही है । लिहाफ़ को कंधों तक खींचते हुए मधु नौकरानी को आवाज़ देती है—“मंगला, मंगला !” लेकिन आवाज़ इतनी हल्की है कि शायद मंगला तक नहीं जाती । मधु

रजाई लेकर लेट-सी जाती है। कुछ क्षण बाद मंगला स्वयं ही आती है।]

मंगला : बीबी जी, यह आप उदास-उदास क्यों है ?

मधु : (लेटे-लेटे, जरा सिर उठाकर) मंगला, यह किवाड़ बन्द कर दे, बर्फ-सी हवा अन्दर आ रही है।

मंगला : (किवाड़ बन्द करते हुए) मेरी बात का उत्तर नहीं दिया आपने बीबी जी ?

मधु : योंही कुछ तबीयत उदाम है मंगला !

मंगला : कोई पत्र आया बाबू जी का ?

मधु : आया था। शायद आज-कल मे आ जाएँ !

मंगला : तो फिर.....

मधु : (विषाद से हँसकर) तबीयत कुछ भारी-भारी सी है।
शायद सर्दी के कारण.....

(दरवाजे पर दस्तक होती है।)

मधु : (जरा उठकर) कौन ?

सुरो : (बाहर से) दरवाजा तो खोलो।

मधु : (बैठकर) मंगला, जरा किवाड़ खोलना।

(मंगला दरवाजा खोलती है। सुरो और चिन्ती आती हैं।)

मधु : (रजाई परे करके) अरे सुरो, चिन्ती, तुम यहाँ कैसे ?

सुरो : आज ही सवेरे यहाँ उतरी हैं।

चिन्ती : माता जी प्रयाग जा रही थीं। सरिता बहिन का ख्याल था कि दिल्ली भी देखते चलें।

मधु : ठहरी कहाँ हो ?

चिन्ती : कनाट-प्लेस में मलिक चाचा जी के यहाँ । देर से उनका अनुरोध था कि दिल्ली आयें तो.....

मधु : और मुझे पत्र तक नहीं लिखा । इतने दिनों से मैं कह रही थी कि दिल्ली आओ तो.....

सुरो : सबसे पहले तुम्हीं से मिलने आयी है । माता जी कहती थीं कुतुबमीनार.....

चिन्ती : मैंने कहा कुतुबमीनार एक तरफ़ और मधु बहन एक तरफ़...

(मधु ठहाका लगाती है)

सुरो : और फिर दो घण्टे से मारे-मारे फिर रहे हैं तुम्हारी तलाश में !

मधु : लेकिन पता तो मेरा...

चिन्ती : सुरो बहिन भूल गयी । इन्होंने तांगेवाले को भरों के मन्दिर चलने के लिए कह दिया ।

मधु : (आश्चर्य से) भरों के मन्दिर.....

चिन्ती : और तांगे वाला लेगया मब्जीमण्डी, कही तीसहजारी के गिर्जे के पास ।

मधु । गिर्जे के पास.....

(जोर से ठहाका लगाती है)

चिन्ती : (अपनी बात जारी रखते हुए) तब इन्हें ख्याल आया कि मन्दिर तो हनुमान का है । फिर नयी दिल्ली वापस आई ।

(मधु फिर जोर से हँसती है)

सुरो : और तब पता चला कि हम लोग तो यों ही परेशान होते रहे । घर तो तुम्हारा पास ही था ।

मधु तुम लोग भी, मैं कहनी हूँ.....

(जोर से हँस पड़ती है)

सुरो यह इतना हँसना तुम कहाँ से सीख गई ! तुम तो थी जन्म की सिडी.....

चिन्ती भाई सहाब ने सिखा दिया इतने जोर के ठहाके लगाना ! कहाँ है वे ?

मधु बनारस गये हुए हैं, दो महीने से । वहाँ के फर्म का मैनेजर बीमार पड़ गया था ! शायद आज-कल में आ जायँ ।

चिन्ती अच्छे तो हैं ?

मधु अच्छे हैं । मौज में हैं । लेकिन तुम खड़ी बयो हो । इधर आ जाओ बिस्तर पर (नौकरानी को आवाज देती है) मगला, मगला !

(सुरो और चिन्ती कुर्सियों पर बैठने लगती हैं)

मधु अरे, कुर्सियाँ छोड़ो । बस चली आओ इधर, पलंग पर बैठते हैं लिहाफ लेकर ।

सुरो लेकिन मेरे पाव (हँसकर) ओर मैं धो नहीं सकती इन्हे ।

मधु अरे क्या हुआ है तुम्हारे पावों को ! जुराबे तो पहन रखी है तुमने ?

चिन्ती पर तुम्हारा बिस्तर ?

मधु कुछ नहीं होता बिस्तर को । मेरे बिस्तर का ध्यान छोड़ो । बस चली आओ इधर । यह किताब बन्द कर दो, बर्फ-सी हवा अन्दर आ रही है ।

(मगला आती है)

मंगला आपने आवाज दी थी बीबी जी ?

मधु : मंगला चाय बनाकर लाओ !

[चिन्ती किवाड़ बन्द कर देती है । तीनों घुटनों पर लिहाक ले कर आराम से बिस्तर पर बैठ जाती हैं ।]

सुरो : पुष्पा की शादी हो रही है, अगले महीने ।

मधु : (चाँककर, खुशी से) लेफ्टिनेंट वीरेन्द्र के साथ ?

चिन्ती : (हँसकर) सब तुम्हारे जैसी नहीं । वह प्रेम करती रहेगी वीरेन्द्र से जीवन भर, शादी तो उसकी प्रोफ़ेसर मुन्शीराम ही के साथ होगी ।

मधु : पर मुन्शीराम.....

सुरो : खड़े का खालसा* है, भई । लेफ्टिनेंट साहब तो आते हैं कभी-कभी वर्ष भर में एक-दो बार, और प्रोफ़ेसर साहब सिर पर सवार रहते हैं आठों पहर, बुरे साये की तरह ।

चिन्ती : वह लम्म-मलम्मा लमढीक-सा आदमी ! जोर की हवा चले तो उड़ता चला जाये ! मैं सोचती हूँ कि उसे पुष्पा जैसी मोटी-मुटल्ली से प्रेम भी हुआ तो कैसे ?

मधु : और मैं इस बात पर हैरान हूँ कि पुष्पा उसे पसन्द ही कैसे करती है । मैं तो उसे पाँच मिनट के लिए भी सहन न कर सकूँ । चेहरे पर तो उसके नहसत बरसनी है और मालूम होता है जैसे.....

चिन्ती : वर्षों स्नान-गृह का मुँह न देखा हो !

सुरो : सहन तो उसे करना ही पड़ता है । उसके पिता प्रोफ़ेसर मुन्शीराम पर बड़े प्रसन्न हैं । उन्होंने प्रोफ़ेसर साहब को

*पंजाबी का मुहाविरा — 'जो आदमी सिर पर खड़ा रहता है वह काम निकाल लेता है ।'

पढाया-लिखाया और अपने कालेज में लगाया । वीरेन्द्र तो चार वर्ष बी० ए० में रहे और प्रोफेसर मुन्शीराम ने रिकार्ड तोड़ा था ।

चिन्ती : अब दोनों मिलकर बच्चे पैदा करने का रिकार्ड तोड़ेंगे !

(सब हँसती हैं—मंगला चाय की ट्रे लाती है)

मंगला : कहाँ लगाऊँ चाय बीबी जी ?

मधु : वहाँ मेज पर रख दो और एक-एक प्याला बनाकर हमें दो यह तिपाई सरकाकर इस पर बिस्कुट रख दो ।

सुरो : (आश्चर्य से) मधु !

मधु : अरे उठकर कहाँ जाओगी ! यही बैठी रहो । इस गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग-टेबल पर जाने में आ चुका चाय का मजा !

चिन्ती : (उठने का प्रयास करते हुए हलके-से क्रोध से) मधु !

मधु : हटाओ भी, अब बैठी रहो यही ।

चिन्ती : (व्यग्न से) तो ब्याह के बाद रानी मधुमालती ने अपने सब सिद्धान्त बदल डाले हैं । अब डाइनिंग-टेबल के बदले बिस्तर पर ही चाय पीती है और बिस्तर पर ही खाना भी नोश फरमाती हैं ।

सुरो : कहाँ तो यह कि पानी का गिलास भी पीना हो तो डाइनिंग रूम की ओर भागती और कहाँ यह कि.....

मधु : अरे क्या रक्खा है इस तकल्लुफ में ! सच कहो, इस समय किसका जी चाहता है कि इस नर्म गर्म बिस्तर से उठकर डाइनिंग-टेबल पर जाये । लो बिस्कुट लो और चाय का प्याला उठाओ ! ठंडी हो रही है ।

[सब चाय के प्याले उठा लेती हैं और चाय पीते-पीते बातें करती हैं]

सुरो : मैं पूछती हूँ-- यदि चाय बिस्तर पर गिर जाय ?

मधु : तो क्या हुआ । चादर धुलवाई जा सकती है । और फिर किसी दिन सहसा हो आने वाली दुर्घटना के भय से कोई रोज़ के सुख-आराम को तो नहीं छोड़ देता ।

सुरो : सुख-आराम (व्यंग्य से हँसती है) तुम बिस्तर पर चाय पीने को बहुत बड़ा सुख समझती हो.....

(फिर हँसती है)

चिन्ती : और फिर संस्कृति, सुरुचि.....

मधु : आदमी की आधारभूत भावनाओं पर नित्य नये दिन चढ़ते चले जाने वाले पदों का नाम ही तो संस्कृति है । सोसाइटी के एक वर्ग के लिए दूसरा वर्ग सदैव असभ्य और असंस्कृत रहेगा । फिर कहाँ तक आदमी सभ्यता और संस्कृति के पीछे भागे । और रही सुरुचि, तो यह भी अभिजात वर्ग की स्नात्री ^१ का दूसरा नाम है ।

सुरो : यह तुम क्या कह रही हो ? क्या तुम चाहती हो कि इतना कुछ सीख-समझकर आदमी फिर पहले की भाँति बर्बर बन जाये ?

मधु : नहीं, बर्बर बनने की क्या जरूरत है ? आदमी सीमाओं को छूता हुआ क्यों चले ? मध्य का मार्ग क्यों न अपनाये । न इतना खुले कि बर्बर दिखाई दे, न इतना बँधे कि सनकी — महात्मा बुद्ध ने कहा था.....

सुरो : (हँसकर) महात्मा बुद्ध ! तुम्हें हो क्या गया है, सदियों पुराने गले-सड़े विचारों को तुम आज की सभ्यता पर लादना चाहती हो !

^१Snobbery=अपने से छोटों को हेय समझने का स्वभाव ।

चिन्ती : मनुष्य हर घड़ी, हर पल प्रगति के पथ पर अग्रसर है ।
 आज के सिद्धान्त कल काम न देगे और कल के परसों नहीं ।
 बर्नाडिं शा.....

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) बर्नाडिं शा—हटाओ, क्या बेमजा बहस ले
 बैठी हो । मगला, चाय का एक-एक कप और बना ।

चिन्ती : बस भई, अब तो हम चलेगे । इतनी देर हो गयी हमे यहाँ
 आये । मगला, हाथ धुला दो हमारे ।

मधु : अरे भई एक-एक प्याला तो और लो ।

सुरो : नही मधु, अब चलेगे । वहाँ सब लोग परेशान हो रहे होंगे ।
 हमने कहा था, हम केवल मधु का घर देखने जा रहे है ।
 एक-आध घटे मे लौट आयेगे और यहाँ आने ही मे दो घटे
 लग गये ।

चिन्ती . बाथ-रूम किधर है । हम वही हाथ धो आते है ।

मधु : अरे क्या धोओगी इस सर्दी मे हाथ ?

सुरो : नही भई, हाथ तो हम जरूर धोयेगे । चिप-चिप कर रहे हैं ।

मधु : तो मगे । (मगला से) मगला, इनके हाथ धुलवा दो ।

सुरो : बाथ-रूम.....

मधु : अरे बाथ-रूम मे जाकर क्या करोगी ? इधर बरामदे ही मे
 धो लो ।

[किवाड़ खोलकर सुरो और चिन्ती हाथ धोती है ।

मधु चुपचाप अपने प्याले की शेष चाय पीती है]

सुरो : (गिले हाथ लिये वापस आकर) तौलिया कहाँ है ?

मधु : तौलिया नही दे गयी मगला ? अच्छा वह ले लो जो बूँटी
 पर टँगा है ।

सुरो : (क्रोध से) मधु, तुम अच्छी तरह जानती हो.....

मधु : मंगला, इन्हें अन्दर से एक धुला हुआ तौलिया ला दो ।

[चिन्ती भी गीले हाथ लिये आ जाती है । मंगला तौलिया ले आती है और दोनों हाथ पोंछती हैं]

मैं कहती थी, अभी कुछ देर बैठतीं !

चिन्ती नहीं भई, अब कल आने का प्रयास करेंगे ।

(हाथ पोंछकर तौलिया कुर्सी की पीठ पर रख देती है)

मधु : प्रयास नहीं, जरूर आना । भूलना नहीं । और खाना भी यही खाना ।

सुरो : हाँ, हाँ, अवश्य आयेगे ।

(मधु उठने का प्रयत्न करती है ।)

अब उठने का तकल्लुफ़ न करो । बैठी रहो अपने गम लिहाफ़ में । दरवाजा हम बन्द किये जाते हैं । बर्फ़-सी हवा अन्दर आ रही है ।

(हँसती हुई चली जाती हैं । दरवाजा बन्द किये जाती हैं ।)

मधु : मुझे एक प्याला और बना दो मंगला !

मंगला : (प्याला बनाकर देते हुए) ये कौन थीं बीबी जी ?

मधु : मेरी सहेलियाँ थीं । कालेज में हम साथ-साथ पढ़ते थे और होस्टल में भी साथ-साथ ही रहते थे ।

(कुछ क्षण मधु चुपचाप चाय पीती है, फिर :)

मंगला !

मंगला : जी, बीबी जी ।

मधु : मंगला, ज़रा मेरी ओर देखकर बता तो, क्या मैं सचमुच बदल गई हूँ ?

मंगला : (चुप रहती है) .

मधु : (जैसे अपने आप से) मेरी सहेलियाँ कहती हैं, मैं बदल गई हूँ । पड़ोमिनें भी यही कहती हैं ! मेरी ओर जरा देखकर बता तो मंगला, क्या मैं वास्तव में बदल सकी हूँ ?

मंगला : मैं तो आठों पहर आपके पास रहती हूँ बीबी जी, मैं क्या जानूँ ।

मधु : (अपनी बात जारी रखते हुए) मेरी आँखों में देखकर बता मंगला, क्या ये बदल सकी है । इनमें घृणा की झलक तो नहीं ?

मंगला : (आश्चर्य से) घृणा !

मधु : मेरे व्यवहार में तकल्लुफ़ और बनावट तो नहीं ?

मंगला : (उसी आश्चर्य से) बनावट, तकल्लुफ़ !

मधु : तकल्लुफ़, बनावट, नफरत—तीनों को अब मैं अपने मन में निकाल देना चाहती हूँ (जैसे अपने आप से) दो महीने पहले, वे इसी बात पर मुझमें लड़कर चले गए थे ।

मंगला : क्या कह रही है बीबी जी आप ! बाबू जी तो.....

मधु : (शून्य में देखते हुए) उनका गुस्सा अभी तक नहीं उतरा । इन महीनों में उन्होंने मुझे एक पत्र भी नहीं लिखा ।

मंगला : एक पत्र भी नहीं लिखा, लेकिन.....

मधु : (व्यंग्य से) — “मैं कुशल से हूँ, अपनी कुशल का पता देना !” या “मैंनेजर बीमार है, ज्योंही स्वस्थ हुआ चला आऊँगा” इन्हें तुम पत्र लिखना कहती हो । वे मुझसे नाराज हैं । उनका ख्याल है कि मैं उनसे घृणा करती हूँ ।

मंगला : (कुछ भी समझने में असफल होते हुए) घृणा, घृणा ?

मधु : यदि मैं बचपन ही से ऐसे वातावरण में पली हूँ जहाँ सफाई और सलीके का बेहद ख्याल रखा जाता है तो इसमें मेरा क्या दोष है ? (लगभग भरे गले से) वे सफाई और सुरुचि को मेरी घृणा बताते हैं। मैं बहुतेरा यत्न करती हूँ कि इस सब सफाई-उफाई को छोड़ दूँ, इन तकल्लुफात को तिलाँजलि दे दूँ, पर अपने इस प्रयास में कभी-कभी मुझे अपने से घृणा होने लगती है। (लम्बी साँस भरकर) बचपन से जो संस्कार मैंने पाये हैं, उनसे मुक्ति पाना मेरे लिए उतना आसान नहीं। (अचानक हड़ता से) पर नहीं, मैं अपनी इस सारी सनक को छोड़ दूँगी। पुरानी आदतों से छुटकारा पा लूँगी ! वे समझते हैं, मैं उनसे नफरत करती हूँ !

मंगला : आप क्या कह रही हैं बीबी जी ?

मधु : वे समझते हैं-- मैं उनसे, उनके स्वभाव से, उनके वातावरण से, उनकी हर एक बात से घृणा करती हूँ। (सिसकने लगती है) मैंने इन दो महीनों में अपने आपको बिलकुल बदल डाला है।

(दरवाजा अचानक खुलता है और वसन्त प्रवेश करता है)

वसन्त : हेल्-लो मधु ! क्या हाल-चाल है जनाब के ? (मंगला से) मंगला, तगि से सामान उतरवाओ। और (जोब से पैसे निकालते हुए) और यह लो डेढ़ रुपया ! तांगे वाले को दे दो।

(मंगला पैसे लेकर चली जाती है)

वसन्त : (फिर मधु के पास आते हुए) कहो भई, क्या हाल-हाल है, यह सूरत कैसी रोनी बना रखी है ! जी कुछ खराब है क्या ?

मधु : (जो इस बीच में पलंग से उतर आयी है—हॉसने का प्रयास करते हुए) सूखा जाड़ा पड़ रहा है। जुबाम है मुझे तीन-चार दिन से।

वसन्त : मैंने तुम्हें कितनी बार कहा है कि अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखा करो। सेहत—सेहत—सेहत, दुनिया में जो कुछ है सेहत है। जीवन में तुम्हारी यह सफाई और सुघड़ता, यह मुरुचि-संस्कृति, ये नज़ाकते, नफासते, इतना काम न देगी, जितना सेहत। यही ठीक नहीं रहती तो ये सब किस काम की और जब यह ठीक है तो फिर इनकी कोई ज़रूरत नहीं। (अपने कथन की बारीकी का स्वयं ही आनन्द लेता है और फिर जैसे उसने पहली बार कमरे को अच्छी तरह देखा हो) अरे यह कायापलट कैसी ? यह पलंग ड्राइंगरूम में कैसे आ गया। और ट्रे और प्याले……

मधु : मैंने पलंग ड्रॉवर ही खिंचा दिया है कि आप और आप के मित्रों को जग भी कष्ट न हो। मज़े में लिहाफ़ लेकर बंठिए। टेलीफोन आपके मिरहाने रहेगा।

वसन्त : (उल्लास से) वाह ! मैं कहता हूँ ! तुम तो, तुम……तो…… बेहद अच्छी हो !

(उसे आलिङ्गन में भर लेता है)

मधु : मैं स्वयं अपनी सहेलियों के साथ इसी लिहाफ़ में बैठी रही हूँ।

वसन्त : (आश्चर्य-मिश्रित उल्लास से उसकी दोनों बांहों को थामे उसकी आँखों में देखते हुए) सच !

मधु : (उसकी ओर प्रशंसा की इच्छुक प्यार-भरी धृष्टि से देखते हुए) और चाय भी हमने यहीं पी है।

वसन्त : (प्रसन्नता से) व...ह ! (उसे छोड़ कमरे में एक चक्कर लगाकर) मैं कहता हूँ—अब तुम जिन्दगी का रहस्य समझ पाई हो। सफल जीवन का भेद बाह्य तड़क-भड़क में नहीं, अन्तर की दृढ़ता में है। यदि हमारी प्रतिरोध शक्ति, हमारी Power of Resistance कायम है ...

मधु : चाय भी अब आप यहीं पिया कीजियेगा, अपने नर्म-नर्म बिस्तर पर !

वसन्त : (अत्यधिक उत्साह से) वाह वा वाह ! अब इसी बात पर तुम मंगला से कहो, मेरे लिए चाय का पानी रखे।

मधु : अब तो आप नाराज नहीं हैं ?

वसन्त : (आश्चर्य से) नाराज !

मधु : आप इतने दिनों तक मन में गुस्सा रख सकते हैं, यह मैंने स्वप्न में भी न सोचा था।

वसन्त : (और भी आश्चर्य से) गुस्सा !

मधु : दो महीने से आपने ढंग से पत्र तक नहीं लिखा।

वसन्त : पर मैंने...

मधु : पत्र लिखे थे जी ! “मैं कुशल से हूँ। अपनी कुशल का पता देना”—इसे पत्र लिखना कहते होंगे।

वसन्त : (जोर से ठहाका मारता है) तो तुम इसका कारण यह समझती हो कि मैं तुमसे नाराज हूँ ? पगली, तुमसे भी कभी कोई नाराज हो सकता है !

मधु : पर दो पंक्तियाँ...

वसन्त : दो पंक्तियाँ लिखने का भी अवकाश मिल गया, तुम इसीको बहुत समझो !

मधु : अच्छा आप जाकर हाथ-मुँह धो लीजिए । मैं चाय तैयार करती हूँ ।

वसन्त : मैं कहता हूँ तुम कितनी...तुम किननी अच्छी हो !

(उसे बाहों में भरकर कमरे में एक चक्कर दे देता है)

मधु : (हँसकर अपने आपको उसके आलिंगन से मुक्त करते हुए)
अच्छा, अच्छा चलिए, पहले हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलिए ।

वसन्त : यह फिर तुमने कपड़े बदलने की पक्क लगाई ?

मधु : क्यों कपड़े न बदलिएगा ? एक रात और एक दिन गाड़ी में सफर करके आये है । माग की धूल सारे शरीर पर पड़ी हुई है । चलिए, चलिए, जल्दी हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदलिए ! मैं इतने में चाय तैयार करती हूँ (वसन्त को स्नानगृह के दरवाजे की ओर धकेल देती है और नौकरानी को आवाज देती है) मगला, मगला !

मगला : (दूसरे दरवाजे से भाँकती है) जी, बीबी जी !

मधु : सामान रखवा लिया या नहीं ।

मगला : जी, बीबी जी !

मधु : यह दूँ और प्यालियाँ उठा । पानी तो चाय का ठंडा हो गया होगा । बाबू जी उधर हाथ-मुँह धोने गये ह । मैं और पानी रखती हूँ । इतने में यह पानी फेंककर चायदानी और प्यालियाँ अच्छी तरह धो डाल ।

[मगला दूँ आदि उठाकर जाती है । एक चम्मच गिर जाता है ।]

मधु : (कुछ तीखे स्वर में) यह चम्मच फिर फर्श पर गिरा दिया तुने । बीस बार कहा है कि चम्मच न गिराया कर फर्श पर,

चिप-चिप होने लगती है । अब ट्रे बाहर रखकर जगह को गीलेकपड़े से पोंछ डाल !

वसन्त : (स्नानगृह से) अरे, भई साबुन कहाँ है ?

मधु : ध्यान से देखिए वहीं तखती पर पड़ा है ।

वसन्त : (वहीं से) और तौलिया !

मधु : हाथ-मुँह धो आइए और इधर कमरे से सूखा नया तौलिया लेकर पोंछ लीजिए ।

[मंगला कपड़े का टुकड़ा भिगोकर लाती है और चुपचाप फ़र्श साफ़ करने लगती है।]

तू फ़र्श साफ़ करके चायदानी और प्यालियाँ धो डाल और मैं पानी रखती हूँ चाय का !

[रसोईघर के दरवाजे से चली जाती है । कुछ क्षण तक मंगला चुपचाप फ़र्श साफ़ किये जाती है । फिर वसन्त हाथ-मुँह धोकर कुर्ते की आस्तीनें चढ़ाये, गुनगुनाता हुआ आता है—

हिंडोला कंसे झूलूँ, मेरा जिया डोले रे !

मैं झूला कंसे झूलूँ, मेरा जिया डोले रे !

और अपने ध्यान में मग्न कुर्सी की पीठ पर पड़े हुए उस तौलियो से मुँह पोंछने लगता है जिससे सुरो, चिन्ती हाथ-मुँह पोंछकर गई हैं।]

मधु : (रसोईघर से) यह केतली कैसी बना रखी है मंगला तूने ? मनो मँल जमी हुई है पेंदे में (केतली हाथ में लिए आता है) तुझे कभी बर्तन न साफ़ करने आयेगे मंगला । कितनी बार कहा है कि सफ़ाई का... (अचानक वसन्त को सुरो वाले

तौलिये से मुँह पोंछते हुए देखकर लगभग चीखते हुए) यह सूखा नया तौलिया लिया है आपने ? मैं पूछती हूँ, आप सूखे और गीले तौलिये में भी तमीज़ नहीं कर सकते ? अभी तो सुरो और चिन्ती चाय पी कर इस तौलिये से हाथ पोंछकर गई है ।

वसन्त : (घबराकर) परन्तु नया...

मधु : नया तौलिया उधर कमरे में टँगा है ।

वसन्त : ओह, ये कम्बख्त तौलिये ! मुझे ध्यान ही नहीं रहता वास्तव में दोनों तौलिये साफ हैं, मुझे...

मधु : जी साफ है ! जरा आँख खोलकर देखिए । गीले और सूखे...

वसन्त : मैंने ऐनक उतार रखी है और ऐनक के बिना तुम जानती हो हमारी दुनिया...

(खिसियानी हँसी हँसता है)

मधु : जी आपकी दुनिया ! जाने आप किस दुनिया में रहते हैं । अब तो ऐनक नहीं । ऐनक हो तो कौनसा आपको कुछ दिखाई देता है !

(मुँह फुलाकर धम से कौच में धँस जाती है)

वसन्त : यह तुमने फिर मुँह लटका लिया । नाराज़ हो गई हो ।

मधु : (व्यंग्य से हँसकर) नहीं, मैं नाराज़ नहीं ।

वसन्त : (चित्लाकर) तुम्हारा ख्याल है, मैं इतना मूर्ख हूँ जो यह भी नहीं पहचान सकता ।

(पर्दा सहसा गिर जाता है ।)



उपचेतना का छल

श्री विष्णु प्रभाकर

पात्र

- शकर — एक धनी खिलाडी, आयु ४० से कम, तारा का पति
- प्रभात — एक युवक और विनोदी वकील, आयु ३० के लगभग,
तारा का एक समय का मित्र
- प्रभु — तारा का स्वामिभक्त सेवक, आयु ३० के ऊपर
- थानेदार — आयु ५० के आसपास
- तारा — शङ्कर की पहली पत्नी, आयु ३० के आसपास
- अनीला — प्रभात की मंगेतर, आयु २५ के आसपास
- तुलसा — तारा की सेविका, आयु ५५ के आसपास

[एक मनोवैज्ञानिक रेडियो-नाटक*]

(प्रारम्भिक संगीत के समाप्त होते ही किसी के गुनगुनाते
हुये इधर- उधर चलने का स्वर उठता है।)

शंकर : (गुनगुनाता रहता है) हूँ, ऊँ, ऊँ, ऊँ, हूँ,—ऊँ, ऊँ, हूँ,
ऊँ, ऊँ, ऊँ, (स्वगत) कोई शब्द नहीं, शायद सो रही है
लेकिन नहीं, वह इस समय नहीं सो सकती। वह अवश्य पूजा
कर रही होगी। मुझे कुछ रुकना चाहिए।

(क्षणिक सन्नाटा)

लेकिन मुझे पुकारना तो चाहिए ? प्रभु, तुलसा, कोई
तो होगा—तो पुकारूँ ? हाँ, हाँ, क्यों नहीं पुकारूँ मैं
भिभक्तता क्यों हूँ ? मेरा पत्र यहाँ आ चुका है लेकिन,
लेकिन उसने मुझे लिखा है—तुम्हारे यहाँ आने की कोई
जरूरत नहीं है (दबी हँसी) हूँ ऊँ, यह सब कुछ नहीं।
यह केवल नारी का दम्भ है, केवल दम्भ ! (द्वार खुलने का
स्वर और तारा का प्रवेश)

तारा : (सहसा चकित) आ?

शंकर : (घबराया स्वर) हाँ.....हाँ.....मैं हूँ तारा !

*रेडियो-नाटक होने के कारण रंगमंच के लिए संकेत नहीं
किये गए हैं परन्तु यह नाटक रंगमंच पर खेला जा सकता
है आवश्यकतानुसार रंगमंच का निर्माण किया जा
सकता है।

तारा : (सँमलती हुई) क्या आपको मेरा पत्र नहीं मिला ?

शंकर : (सँमलता हुआ) मिला ?

तारा : फिर ? आप कैसे आए ?

शंकर : क्या मेरा यहाँ आना मना है ?

तारा : (दृढ़ स्वर) था तो नहीं पर अब आपने स्वयं अपने लिए यह मार्ग बन्द कर लिया है ।

शंकर : (घबराहट) मैंने ?

तारा : जी हाँ, आपने !

शंकर : (प्रार्थना) तारा !

तारा : (एकदम) अब आप मुझे तारा कहकर नहीं पुकार सकते ? आपको यहाँ नहीं आना चाहिए था । (मुड़कर तेजी से किवाड़ खोलती है) इससे पहले कि यहाँ का कोई व्यक्ति आपके आने की बात जान सके आप लौट जाइये ! (स्वर दूर होता है)

शंकर : और न लौटूँ तो ?

तारा : क्या मतलब ? (स्वर पास आता है) आप क्या कहना चाहते हैं ? क्या आप...

(सहसा बूढ़ा नौकरानी तुलसा वहाँ प्रवेश करती है)

तुलसा : बेटी (शंकर को देखकर चौंकती है पर उसी तरह बोलती रहती है) बेटी, चाय तैयार है ।

तारा : (कुछ क्रुद्ध) चाय ! (सहसा सँमल कर) लॉन में ले आओ ।

तुलसा : (मुड़ती हुई) बहुत अच्छा ? अभी लाती हूँ (स्वर दूर होता है)

तारा : (कुछ जोर से) सुनो, चाय इनके लिए भी लानी है ।

शंकर : नहीं मेरे लिए नहीं । मैं चाय पीकर आया हूँ ।

तारा : (नौकरानी से) ले आओ, और प्रभु काका से कहो कि लॉन में कुर्सी डाल दे ।

तुलसा : जी, अभी कहती हूँ । (एकदम मुड़कर) नमस्ते मालिक !

शंकर : नमस्ते ! अच्छी हो, काकी ?

तुलसा : (विनम्र हँसी) आपकी दया है, मालिक । मालिक शब्द के तो बहुत दिनो में आये ।

तारा : चाय जल्दी ले आओ, काकी ! मुझे जाना है । और देखो ! चाय के साथ ये क्या लेते हैं वह तुम जानती हो ।

तुलसा : (उच्छ्वसित) जानती हूँ, जानती क्यों नहीं ? अभी बनाती हूँ ।
(स्वर धीरे-धीरे दूर चला जाता है)

शंकर : तुम्हें कहीं जाना है ?

तारा : जी हाँ ।

शंकर : अभी ?

तारा : जी हाँ ।

शंकर : बहुत आवश्यक काम है ?

तारा : आप क्या कहना चाहते हैं ?

शंकर : (एकदम) तारा ! मैं आज तुमसे बहुत आवश्यक बातें करने आया हूँ ।

तारा : (व्यंग्य) क्या मैं अभी आपकी बातें सुनने योग्य हूँ ?

शंकर : तभी तो आया हूँ । देखता हूँ तुम मुझे भूली नहीं हो । मैं कब क्या खाता हूँ, इसका तुम्हें ध्यान है ?

तारा : आप मेरे अतिथि हैं । अतिथि का सत्कार करना मनुष्य का धर्म है ।

शंकर : तो मैं अतिथि हूँ ?

तारा : जी हाँ ।

शंकर : तारा ?

तारा : फिर वही तारा ? मैं कहती हूँ आप मुझे तारा कहकर नहीं पुकार सकते । जो तार टूट चुका है, आप उसे जोड़ने का प्रयत्न क्यों कर रहे हैं ?

शंकर : (भावावेश) नहीं तारा, मैं किसी तार को जोड़ने का प्रयत्न नहीं कर रहा—वह तो तुमने ही सदा यह प्रयत्न किया है कि वह कभी न टूटे । मैं वे दिन भूलता जा रहा था जब तुम मेरी थीं । वे क्षण जब तुम पहली बार मेरे सामने आई थीं, वह अग्नि की प्रदक्षिणा, वह प्रथम स्पर्श और वह प्रथम रात्रि, बादलों के पंखों पर उड़ने वाले वे मदमाते दिवस.....तारा, काश कि वे अमर हो जाते !

तारा : वे सदा अमर रहेंगे । जो बात एक बार हो जाती है, वह कभी नहीं मिटती ।

शंकर : परन्तु मनुष्य उसको भूल जाता है ।

तारा : नहीं । यदि मनुष्य कुछ भूल सकता तो आज आप इधर कैसे आते ?

शंकर : सच तारा ! मैं कुछ नहीं भूला । मुझे अब सब कुछ याद आता जा रहा है । जैसे वे घटनाएं अभी घट रही हैं ।

तारा : यही तो विडम्बना है । कुछ बातें कुछ देर के लिए छिप जाती हैं । परन्तु एक समय आता है जब वे आप ही आप प्रकाश की तरह स्पष्ट हो उठती हैं ।

शंकर : परन्तु ऐसा तो होता है कि वह क्षण मनुष्य के जीवनकाल में कभी भी नहीं आता ।

तारा : हाँ, होता है ।

शंकर : वही तो भूलना है, वही विस्मृति है, तारा !

तारा : विस्मृति ? आज आप कुछ इस प्रकार बातें कर रहे हैं जिससे जान पड़ता है कि आप अपने वर्तमान जीवन से सन्तुष्ट नहीं हैं ।

शंकर : तुम्हारे पास आकर मैं मन्तोष की बातें करने योग्य हो पाता, तो तुम से इस प्रकार अलग क्यों होना ? (सहसा स्वर भीगता है) तारा ! काश कि तुम मुझे उस बन्धन में न बाँधती ।

तारा : और अपने आप को आपके अत्याचार का शिकार होने देती ।

शंकर : (विनम्र अपराधी का स्वर) तारा !

तारा : मैं जानती थी कि मैं आपके मार्ग पर नहीं चल सकती । भोग का वह वैभवशाली मार्ग मेरे भाग्य में नहीं बदा था और साथ ही आप भी मेरे पथ के पथिक नहीं बन सकते थे । आप जीवन को जिस दृष्टि से देखते थे वह दृष्टि मेरे पास नहीं थी । संसार की दृष्टि में हम दोनों का विवाह हुआ था पर हम दोनों एक-दूसरे के लिये नहीं बने थे । यही सब सोचकर मैंने आपका दूसरा विवाह होने दिया ।

शंकर : होने नहीं दिया, तुमने ही उसे कराया था ।

तारा : हाँ, मैंने ही कराया था । क्योंकि मैं जानती थी कि आपको उसकी जरूरत है ।

शंकर : जरूरत तुम्हें भी थी ।

तारा : बेशक थी, तभी तो तुम्हे विवश किया था ।

शंकर : ओह, कितना क्रान्तिकारी था वह ।

तारा : क्रान्तिकारी ! क्रान्तिकारी क्या था ? क्या एक पुरुष का दूसरा विवाह करना ?

शंकर : नहीं, वह तो सदा कर सकता है ।

तारा : तो क्या एक स्त्री का अपने पति को दूसरी स्त्री को सौंप देना ?

शंकर : ऐसे उदाहरणों की हिन्दू-समाज में कमी नहीं है ।

तारा : तो ?

शंकर : तुम्हारा मुँहसे इस प्रकार मुक्ति पा लेना ।

तारा : (तारा हँस पड़ती है) आप जानते हैं मुझे महात्माजी के प्रति कितनी श्रद्धा रही है । मैं एक दिन जेल जाना चाहती थी पर आपने मना कर दिया । मैंने फिर भी जाने का निश्चय किया । जानते हो, तब उसने क्या कहा था ?

शंकर : जानता हूँ । उसने कहा था कि तुम्हें मेरी आज्ञा ले लेनी चाहिए ।

तारा : और मैंने आपकी आज्ञा पाने के लिए क्या नहीं किया था पर मैं उसे पा नहीं सकी थी । वे सब जानी पहिचानी बातें हैं । उन्हें दोहराने की आवश्यकता नहीं । आपके शब्दों में मैं त्यागती थी, आप भोगते थे और आपको त्याग का भोग निष्क्रिय लगता था ।

शंकर : तुम ठीक कहती हो, तारा ! सब कुछ ऐसा ही था लेकिन... ओह ! प्रभु आ रहा है ।

(प्रभु और तुलसा का प्रवेश)

प्रभु : नमस्ते, मालिक !

शंकर : नमस्ते, काका । खुश हो ?

(प्लेट-प्यालों की खड़-खड़ सुनती रहती है)

प्रभु : मालिक की दया है । मालिक, चाय तैयार है । आग्रो, बेटी...

तारा : ठीक है, काका । मुझे बाहर जाना है, तुम तांगा ले आग्रो ।

(दोनों आगे बढ़ते हैं)

प्रभु : अभी गया, बेटी ! अभी गया । कुछ जरूरत हो तो मंगा लेना । पिस्ते का हलवा बहुत है ।

(स्वर दूर होता जाता है)

शंकर : (हर्ष) पिस्ते का हलवा ! पिस्ते का हलवा किसने बनाया है ?

तागा : तुलसा काकी ने । (बैठते हैं)

शंकर : तुम्हारे जैसा बना लेती है ?

तारा : खाइये । (चाय बनाती है) चीनी कुछ कम की ?

शंकर : (खाता हुआ) मैंने अपने जीवन में क्या कभी कुछ कम किया है, तारा ?

तारा : (हँसती है) मैं समझती थी कि दूर होकर शायद कुछ प्रभाव डाल सकूँ ।

शंकर : इतना मोह रखकर भी तुम मुझे लोटा दे रही थी ?

तारा : वह भी मोह था ।

शंकर : (घूँट भरता हुआ) बेशक वह भी मोह था और मैं जिस काम के लिये आया हूँ, वह भी मोह है ?

तारा : आप किस काम के लिये आये हैं ?

(स्वर में भय-मिश्रित अचरज है)

शंकर : सुनने का समय है ?

तारा : बहुत लम्बी बात है !

शंकर : समय की दृष्टि से लम्बी न हो पर विचार की दृष्टि से अवश्य गहरी है ।

तारा : (चाय का घूंट लेकर) हलवा अच्छा है ?

शंकर : ओह, ध्यान नहीं रहा । अब देखता हूँ । (खाता है) बेशक वही स्वाद है ।

तारा : अब कहो, क्या कहना है ?

शंकर : (गम्भीर स्वर) तुम्हें शायद पता नहीं, मालती अब इस दुनिया में नहीं है । (तारा सहसा कांपती है, प्याला गिरते-गिरते बचता है, तेज खट्ट की आवाज होती है ।)

तारा : क्या ? (पृष्ठभूमि में संगीत)

शंकर : हाँ तारा ! तीन महीने हुए नैनीताल में उसे ज्वर आया था । उसी ज्वर में एक मह पूर्व वह चल बसी ।

तारा : मुझे सूचना भी नहीं दी !

शंकर : तब कोई जरूरत नहीं समझी थी । मैं तुम्हें अपने जीवन से निकाल देने का प्रण कर बैठा था । तुमने अपनी सब सम्पत्ति महात्माजी के चरणों में चढ़ा देने का निश्चय कर लिया था । महात्मा बहुत बड़े थे और उनके प्रति तुम्हारी श्रद्धा प्रशंसनीय थी लेकिन मुझे यह कभी अच्छा नहीं लगा कि तुम मुझे छोड़ कर किसी दूसरे के प्रति इतनी श्रद्धा रखो । इसलिये पिछली बार, जब मैं तुमसे मिलकर गया था, तब मैंने प्रण कर लिया था कि अब तुम्हारे पास नहीं आऊंगा ।

तारा : लेकिन आपको मुझे मालती की बीमारी का सभाचार तो

देना ही चाहिये था । मैं उसे देख तो लेती । आपके घर में उसका स्वागत मैंने ही तो किया था ।

शंकर : लेकिन स्वयं वहाँ से हट जाने के लिये । तुम्हें मुझसे धृणा थी और तुम मुझसे प्रतिशोध लेना चाहती थीं । तभी तुमने...

तारा : (तिलमिलाकर) फिर वही बात । मैं जानना चाहती हूँ कि आप बार-बार उसकी चर्चा क्यों करते हैं ? आप अपने आने का कारण क्यों नहीं बताते ? मालती के बच्चे भी तो होंगे ?

शंकर : हाँ । वे ही तो मेरे आने का कारण हैं ।

तारा : क्या मतलब ?

शंकर : मतलब यह कि मालती का छोटा लड़का पाँच महीने का भी नहीं है और माँ के अभाव में, मुझे लगता है, वह जी नहीं सकेगा ।

तारा : कोई नर्स नहीं है ?

शंकर : है, लेकिन नर्स माँ नहीं बन सकती, तारा !

तारा : माँ तो कोई भी नहीं बन सकता लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि माँ नहीं है तो बच्चे को मर जाना ही चाहिये (सहसा रुककर) और मर भी जाए तो क्या दुनिया का कुछ बिगड़ जायगा ?

शंकर : (एकदम) तारा, तुम्हें क्रोध आ रहा है ? लेकिन तुम्हें बच्चे पर क्रोध नहीं करना चाहिये ।

तारा : (क्रुद्ध) मुझे बच्चे पर क्रोध नहीं करना चाहिये ! मैं बच्चे की कौन होती हूँ ? आप अपनी क्यों नहीं कहते ? आप तो उसके पिता हैं । क्या आप फिर विवाह नहीं करना चाहते ?
पृष्ठ- भूमि में संगीत) बोलिये !

शंकर : (बिनम्र स्वर) तारा—तारा, तुम मुझे जानती हो । मैं विवश हूँ । बेशक मैं विवाह करना चाहता हूँ पर मैं तुमसे सच कहता हूँ—मैं बच्चे से छुटकारा पाना नहीं चाहता । मैं चाहता हूँ कि उसे स्नेह मिले । वह माँ के अभाव को महसूस न करे और मैं समझता हूँ कि तुम्हारी सहायता बिना यह सब नहीं हो सकता ।

तारा : लेकिन आपको यह समझने का अधिकार किसने दिया कि मैं आपके बच्चे को स्नेह दे सकूँगी ?

शंकर : मेरे मन ने ।

तारा : (व्यंग) यूँ क्यों नहीं कहते कि आपके स्वार्थ ने आपको यह सब सुझाया है । आप स्वार्थ की सीमा से हटकर कुछ मोच ही नहीं सकते ।

शंकर : (कुछ धबराया-सा) शायद तुम ठीक कहती हो । तुम्हारे सामने सच बात को स्वीकार करने में मुझे कोई डर नहीं है ।

तारा : ओह ! इस समय तो आप सत्य के अवतार बन रहे हैं, पर यह समझ लीजिये कि अब यह ठोंग मुझे उल्लू नहीं बना सकेगा । मैं उस बच्चे को एक क्षण के लिये भी स्वीकार नहीं कर सकती । मैं आपसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती । मैं आपकी चाल समझती हूँ । (उठती है) मुझे आप फिर अपनी वासना का शिकार बनाना चाहते हैं पर विश्वास रखिए, मैं अब आपकी बात पूरी नहीं होने दूँगी ।

शंकर : तो...तो...मैं.....

तारा : आप जा सकते हैं ।

(तेजी से कमरे में जाती है । स्वर दूर हट जाता है ।

फिवाड़ तेजी से खुलते और बन्द होते हैं । गहरा आश्चर्यमय

संगीत उठता है. गिरता है और फिर अन्तर-सूचक संगीत के बाव तारा का आवेशपूर्ण स्वगत स्वर उठता है ।

तारा : (स्वगत-आवेश) पुरुष कितना स्वार्थी है ! अपने स्वार्थ के लिये वह सब कुछ भूल जाता है । वह अपने बनाये आदर्शों को आप ही तोड़ डालता है । सत्यं, शिवं, सुन्दरं, सब उसकी व्याख्या के स्वरूप हैं । स्वर्गं, नर्कं सब उमके इंगित से बनने बिगड़ते हैं । नारी को वह अपनी इच्छानुसार जगदम्बा, जग-ज्जननी, प्रियतमा, प्रेयसी, उर्वशी, स्वामिनी, मखि जो चाहे बना लेता है । वह उमे दुर्बल समझता है । (जोश आता है) वह उसे अबला कहता है, अबला ! (क्रोध) और नारी भी इस शब्द को कितना गौरवपूर्ण समझती है ! अबला...!

(एक स्वर उठता है, जैसे यह आकाश से आता है । उसे सुन कर तारा स्वयं फाँपती है क्योंकि यह बिल्कुल उसके जैसा स्वर है)

स्वर : (हँसता हुआ) हाँ, गौरवपूर्ण समझती है क्योंकि वह भी स्वार्थी है ।

तारा : (चकित) कौन ? तुम कौन है ?

स्वर : (अट्टहास) तुम मुझे नहीं जानती ? मैं तुम्हारा ही एक रूप हूँ ।

तारा : (और भी चकित) मेरा ही रूप ?

स्वर : हाँ, तुम्हारा ही रूप । तुम्हारी अपनी उपचेतना । तुम अभी पुरुष के बारे में निर्णय दे रही थी लेकिन तुम तो अपने को भी नहीं जानतीं ।

तारा : मैं अपने को भी नहीं जानती ?

उपचेतना : हाँ ! तुम अपने को भी नहीं जानती । तुम जिस बात के लिये पुरुष को दोष दे रही थीं । वही तुम में भी है । तुमने अपने

सुख के लिये अपने पति शंकर को छोड़ा था । तुम भी पुरुष को अपना बनाना चाहती थीं और चाहती हो ।

तारा : मैं पुरुष को अपना बनाना चाहती हूँ । मैं.....!

उपचेतना : हाँ, तुम । मुझे विश्वास है कि तुम प्रभात को नहीं भूली हो । तुम उससे विवाह करना चाहती हो ।

तारा : मैं उससे विवाह करना चाहती हूँ...मैं प्रभात को भूली नहीं हूँ.....मैं ..सुनो ! (गूँज), तुम सुनती नहीं । तुम कहाँ गई ? (फिर गूँज) अरे, यहाँ तो कोई नहीं है । (हँसकर) मैं कितनी पगली हूँ ? सोचते-सोचते इतनी ध्यानमग्न हो गई कि चेतना ही गँवा बैठी । (फिर गम्भीर) लेकिन कुछ भी हो उसने ठीक ही कहा था कि मैं प्रभात को भूली नहीं हूँ । मैं उससे विवाह करना चाहती हूँ । हाँ, मैं विवाह करना चाहती हूँ । अब तक मुझे कर लेना चाहिये था । कर लेती तो आज यह समस्या क्यों उत्पन्न होती...। (द्वार पर खटखटाहट)

तारा : कौन है ?

प्रभु : मैं था, बेटी । ताँगा आ गया है ।

तारा : (अन्दर से बोलती रहती है) उसे लौटा दो । मैं इस समय कहीं नहीं जाऊँगी और देखो, आ सके तो उसे सन्ध्या को आने को कहो । मैं दिल्ली जाऊँगी ।

प्रभु : आज ही ?

तारा : हाँ, आज ही और अकेली ।

प्रभु : अकेली...

तारा : हाँ, अकेली । मेरा सब सामान तैयार कर दो । जाओ ।

(प्रभु के पद-चाप उठते हैं, गिरते हैं, फिर उठते हैं ।
अन्तर-सूचक संगीत के बाद कहानी दूर रसोईघर में शुरू
होती है । तुलसा और प्रभु दोनों गम्भीरता से बातें करते
सुन पड़ते हैं ।)

तुलसा : (धीमा स्वर) क्यों, क्या हुआ ? बेटी गई ?

प्रभु : नहीं गई । मुझे मामला कुछ गम्भीर जान पड़ता है । मालिक
इतने दिनों में आये थे, फिर भी दोनों लड़ पड़े । न जाने क्या
बात हुई ?

तुलसा : इन लोगों की बात समझ में नहीं आती । मियाँ-बीबी अलग
हो गये, फिर भी मिलते हैं । मैं कहती हूँ कि बेटी को शादी
कर लेनी चाहिये ।

प्रभु : तुम नहीं समझती । बेटी अब भी मालिक को प्रेम करती है ।

तुलसा : प्रेम करती है तो अलग क्यों हुई ?

प्रभु : क्योंकि मालिक का चलन अच्छा नहीं था ।

तुलसा : आदमी सब ऐसे ही होने है और फिर पंसा किसका चलन
ठीक रहने देता है ।

प्रभु : इसीलिये तो बेटी ने सब कुछ महात्मा जी को देना चाहा था
पर वे भी घट-घट व्याप्री थे । सब कुछ नहीं लिया । कहा—
इसे देश का समझ कर काम करती रहो । लेकिन खैर । तुम
बेटी के जाने की तैयारी करो ।

तुलसा : कहाँ के लिए ?

प्रभु : बेटी शाम को दिल्ली जा रही है ।

तुलसा : तुम भी तो जाओगे ?

प्रभ : नही, वह अकेली जा रही है। (हँसकर) जरूरत भी क्या है ? दिल्ली में प्रभात बाबू है। तुझे याद है कि वे यहाँ कितना आते थे। अगर वेटी जेल न चली जाती, तो शायद विवाह भी हो जाता।

तुलसा : अब भी क्या बिगड़ा है ? मैं तो यही मनाती हूँ—हे भगवान् ! वेटी का घर बसे।

प्रभु : अवश्य बसेगा। वेटी दिल्ली जा रही है। अब जल्दी ही मुंह मीठा करने का दिन आने वाला है।

(दोनों हँसते हैं, संगीत उठता है और गिरता है। कहानी दिल्ली के एक मध्य स्थिति के घर के अन्दर शुरू होती है)

(किवाड़ खुलने और किसी के आने का स्वर)

प्रभात : (किवाड़ खुलते ही) ओ...तुम, अरे तुम कहाँ से टपक पड़ीं, तारा ? आओ, आओ ! यहाँ क्यों खड़ी हो, आओ !

तारा : नमस्ते ! (किवाड़ बन्द होने का स्वर)

प्रभात : नमस्ते जी, नमस्ते ! मैं तो भूल ही गया था। बात यह है कि अपनों के साथ यह बुजुर्गई शिष्टाचार मुझे अच्छा नहीं लगता। हाँ। कहिये, कहाँ से आना हुआ ?

तारा : प्रयाग से।

प्रभात : अब ? कौन सी गाड़ी आती है ?

तारा : मैं रात आई थी। उमा के पास ठहरी हूँ।

प्रभात : प्रोफ़ेसर उमा अग्रवाल। अच्छा, मैं उन्हें जानता हूँ। लेकिन तुम खड़ी क्यों हो ? बैठो न ? हाँ, कहिये आपकी गाड़ी कैसे चलती है।

(तारा बैठती है प्रभात भी बैठता है)

चाय तो पियोगी-न ! (पुकारकर) कुन्ती ! कुन्ती !!

कुन्ती : (दूर से आता स्वर) जी ।

प्रभात : अरे देखो, कौन आया है ! यहाँ आओ ।

कुन्ती : (यहीं से) अभी आती हूँ ।

प्रभात : तुम कुन्ती को जानती हो, तारा । माँ उसे कही से पकड़ लाई है । किसी दूर-दराज के गिस्ते में ममेरी बहन लगती है । शुद्ध खद्दर पहनती है । एम० ए० में पढ़ रही है । इतनी ब्रिलियन्ट लड़की है कि क्या कहूँ, इतना मुन्दर फ्रेंच प्रोनेन्सियेशन है कि तुम मुनो तो समझो कि फ्रेंच लड़की है ।

(किवाड़ खलने और किसी के आने का स्वर)

कुन्ती : नमस्कार ।

तारा : नमस्कार ।

प्रभात : कुन्ती, तुम वहाँ क्या कर रही थी ? देखो, ये श्रीमती तारा तुमसे मिलने आई हैं । तुम तो इन्हें जानती हो । प्रो० उमा अग्रवाल की मित्र है । जब प्रयाग रहता था, तब इनसे बहुत मिलना होता था और तारा जी ! ये है अनीला उर्फ कुन्ती उर्फ फ्रेंच गर्ल जिनका अभी जिक्र था । हाँ, तो कुन्ती ! अब हाथ जोड़ कर एक बार फिर इन्हें नमस्कार करो ।

अनीला : नमस्कार जीजी । प्रो० अग्रवाल अक्सर आपका जिक्र किया करती है । आपके साहस की वे बड़ी प्रशंसक हैं । आपके दर्शन की बड़ी इच्छा थी । आज आपसे मिलकर मन बहुत प्रसन्न हुआ ।

तारा : (हँसकर) और मेरा मन भी तुमसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुआ । कुछ फ़ीच बोलकर सुनाओ । प्रभात तुम्हारी प्रशंसा कर रहे थे ।

अनीला : (लजीला स्वर) अरे जीजी, आप भी इनकी बातों में आ गईं । ये तो ऐसे ही बनाया करते हैं । प्रभात हैं न । इनके प्रकाश से जग प्रकाशित होता है ।

प्रभात : (प्रभावित होकर) तुम तो कविता भी करती हो । लेकिन विश्वास रखो कि इस प्रकार हमारा पेट भरने वाला नहीं है । चाय भिजवाओ ।

(किवाड़ खुलने और प्यालों की झनझनाहट का स्वर)

अनीला : आपने कहा और चाय हाज़िर हो गई । आइये । जीजी आप भी आओ । (प्यालों की खड़-खड़) अब आप चाय पीजिये, और मैं एक चक्कर कॉलेज का लगा आती हूँ । पाँच मिनट का रास्ता है । बस जाते ही लौटूँगी । जीजी ! आप जाइये नहीं, आपसे मुझे बहुत बातें करनी हैं ।

(जाती है । किवाड़ तेज़ी से खुलकर बन्द होते हैं)

प्रभात : देखो तारा, स्वतन्त्र-भारत की नारियाँ किम गति से आगे बढ़ रही हैं । मैं कहता हूँ कि यह एक दिन मिनिस्टर बनेगी । और मिनिस्टर तो तुम भी बन सकती हो । आज बन सकती हो । तुम्हारे जैसी सुलभी हुई वीरगंगा इस देश में कहाँ है !

तारा : (एकदम) चाय पीजिए । ठण्डी हो रही है ।

प्रभात : ओह, मैं भूल गया था । (घूंट भरकर) अक्सर कुन्ती के साथ बातें करते-करते ठण्डी चाय पीनी पड़ती है । आदत बन गई है, लेकिन हाँ सेठ साहब का क्या हाल है ?

तारा : एक साल बाद कल मिलने आये थे ।

प्रभात : अच्छा, क्या कोई नई बात है ?

तारा : उनकी पत्नी का देहान्त हो गया है ।

प्रभात : ओह, कब हुआ ?

तारा : कोई एक माह पूर्व । बेचारी ने दो बच्चे छोड़े हैं । उनमें पीछा छुड़ाना चाहते हैं ।

प्रभात : क्या किसी अनाथालय में भेज रहे हैं ?

तारा : नहीं, वे चाहते हैं कि मैं छोटे लड़के को रख लूं ।

प्रभात : (हँसकर) और मैं क्या कहता था ? तुम्हारा घर उसकी दृष्टि में अनाथालय के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।

तारा : (कुछ भावावेश) नहीं प्रभात, नहीं, यह बात नहीं है ।

प्रभात : तो ।

तारा : वह...वह... अब भी मुझ पर अपना अधिकार समझने है ।
अब भी वह समझते हैं कि मैं उन्हें प्रेम करती हूँ ।

प्रभात : (चकित धीमा स्वर) तुम उसे प्रेम करती हो ?

तारा : बिल्कुल नहीं ।

प्रभात : तब तो करती हो ।

तारा : क्या मतलब ?

प्रभात : तुम्हारे भीतर जो इतना तीव्र इन्कार है वह प्रतिक्रिया के बिना सम्भव नहीं हो सकता और प्रतिक्रिया तभी होती है जब क्रिया हो ।

तारा : तुम कहना चाहते हो कि मैं शंकर से प्रेम करती हूँ और इसीलिये आज उसकी इतनी विरोधिनी हूँ ।

प्रभात : (धीरे से) तारा, उत्तेजित मत होओ। तुम उससे प्रेम न करतीं तो कैसे उसका दूसरा विवाह करके उसके सुख का ध्यान रखतीं। तुम उस फ्रेच नारी की भाँति हो तारा, जिसने कहा था कि प्रेम करने में ही मेरा अस्तित्व है। तुम प्रेम की प्रतिमा हो। तुम शंकर से प्रेम करती हो, तुम मानवमात्र से प्रेम करती हो, तुम हो ही प्रेम करने के लिये !

तारा : (काँपकर) प्रभात ? प्रभात ??

प्रभात : (उसी भावावेश में) हाँ तारा, तुम हो ही प्रेम करने के लिये। मेरे शब्दों पर ध्यान दो—प्रेम करने के लिये और प्रेम सदा दान करता है, सदा बखेरता है, सहेजता नहीं। यह प्रेम किसी-किसी सौभाग्यशाली को मिलता है। यह भगवान से साक्षात्कार करने जैसा है और मुझे यह कहने की आज्ञा दो तारा ! यही प्रेम भगवान है। महात्मा जी भी तो यही रहस्यमयी बात कहा करते थे। 'मृत्यु ही भगवान है', पर तारा...

तारा : (उच्छ्वसित स्वर) प्रभात, तुम क्या कह रहे हो ? तुम क्या बोल रहे हो ?

प्रभात : यही कि समाज उस प्रेम को स्वीकार नहीं करता। वह उस प्रेम को चाहता है जो पूँजी बढोगता है, जो प्रेमी के नहीं, अपने मुख का ध्यान रखता है।

तारा : (गम्भीर स्वर) प्रभात, तुम इतना जानते हो !

प्रभात : जानना कोई बड़ी बात नहीं है, तारा। जानी लोग इस संसार में बहुत है। अज्ञान संसार का शत्रु नहीं है, शत्रु है ज्ञान का दम्भ।

तारा : (करुणा) बस करो प्रभात, बस करो। मैं तुमसे दर्शन और मनोविज्ञान की चर्चा करने नहीं आई हूँ।

प्रभात : (सहसा) तारा ! (विनम्र) मैं क्षमा चाहता हूँ, तारा । मुझे मालूम नहीं था कि तुम इतनी बदल गई हो ? दर्शन और मनोविज्ञान पर बातें करते हुए मैंने तुम्हारे साथ कितनी ही रातें आँखों में काटी हैं । शायद तुम स्वस्थ नहीं हो । अरे, तुम्हारी आँखें डबडबा आईं ।

तारा : (आँसुओं से भीगा स्वर) न जाने मुझे क्या हो रहा है, प्रभात ? न जाने इन दो दिनों में मेरी दुनिया कहाँ से कहाँ पहुँच गई है । मेरी सारी साधना जैसे रेत का एक घगौदा थी जो तक्रदीर के एक भौके से बरबाद हो गई । वर्षों का तप निष्फल हो गया, मैं हार गई !

प्रभात : तुम हार गईं ! क्या कहना चाहती हो, तारा ?

तारा : कहने आई थी पर अब कुछ नहीं कहूँगी ।

प्रभात : क्यों ?

तारा : क्यों ! यह मुझसे पूछने की बात नहीं है । अपने हृदय में भाँको ।

प्रभात : कैसी रहस्यमयी बातें करती हो !

तारा : (हँसकर) ये रहस्यमयी बातें ! अब तुम इन्हें क्यों समझने लगे हो । तुम सुखी जो हो, विजयी जो हो, सफल जो हो ।

प्रभात : मैं सच कहता हूँ, तारा.....

तारा : अब सच-भूठ परखने का समय नहीं है ।

प्रभात : तारा !

(एकदम किवाड़ खुलते हैं । वे दोनों काँपते हैं । काँकरी भनभनاتی है । अनीला बोलती हुई प्रवेश करती है)

अनीला : बड़ी मुश्किल से छुट्टी मिली है । प्रोफ़ेसर सिंह तो आने ही

नहीं देती थी। ड्रामे की तारीख बहुत पास आ गई है न, लेकिन भला हो प्रो० अग्रवाल का। उन्होंने मेरी सिफारिश की। (एकदम) अरे! आप लोग कैसे बैठे हैं? सारा सामान ऐसे-ही पड़ा है। (क्रॉकरी की खड़खड़) और चाय भी ठण्डी हो गई। आप लोग क्या कर रहे थे?

प्रभात : तुम्हारा इन्तजार। तारा तुम्हारे बिना चाय पीने को राजी ही नहीं हुई।

अनीला : (सहसा शान्त होकर) यह मेरा सौभाग्य है लेकिन जीजी...

तारा : (सँभल चुकी है) सच बात तो यह है अनीला, बातों में हम चाय को भूल ही गये थे।

अनीला : मैं इन्हें जानती हूँ, जब बातें करना शुरू करते हैं तो न किसी को बोलने देते हैं, न कुछ करने देते हैं।

प्रभात : पर फिर भी ये ऐसी हैं कि मुझसे रुष्ट नहीं हुईं और एक तुम हो कि बात-बात पर तुनक जाती हो और दिनों तक अनमनी रहती हो।

तारा : तुम से प्रेम जो करती है.....

अनीला : लजाकर) जीजी!

प्रभात : प्रेम कहाँ करती है! हमेशा मुझसे उलझती रहती है। क्या इसी को प्रेम कहते हैं?

तारा : हाँ, यही तो प्रेम है। (गम्भीर साँस लेकर) भागवान करे तुम्हारा प्रेम अक्षय हो। (अवकाश) अब तो तुम खुश हो न, प्रभात?

प्रभात : (एकदम) तारा! (तभी घड़ी ग्यारह बजाती है) अच्छा तारा! ग्यारह बज गए। मैं चलूँ।

अनीला : (एकदम) चाय नहीं पियोगे ?

प्रभात : नहीं, अब समय नहीं है ।

अनीला : अभी पल भर में बना कर लाती हूँ । तुम तब तक इनसे बातें करो । मैं अभी आई दो मिनट में ।

(जाती है)

तारा : बैठो प्रभात ! इतना घबरा क्यों रहे हो ?

प्रभात : नहीं तारा । मुझे जाना ही होगा । उफ, मैं क्या कह रहा था । हाँ, तारा ! तुम अभी तो हो न ? रात को खूब बातें होगी ।

तारा . नहीं, मैं आज ही जा रही हूँ ।

प्रभात : आज ही ? क्या बहुत आवश्यक काम है ?

तारा : हाँ...! खैर, घबराओ नहीं । जो होना था सो हो गया । अब क्या हो सकता है ? मेरी ओर से तुम्हें निश्चिन्त रहना चाहिए ।

प्रभात : (हँस पड़ता है) ओ हो, मुझे खुशी है कि तुम हँसना नहीं भूली । अच्छा, मैं चला । स्टेशन पर आऊँगा, नमस्कार ।

(शब्द दूर जाते हैं)

तारा . स्टेशन पर आने की कोई आवश्यकता नहीं । शायद मैं बस से जाऊँ । (किवाड़ खुलकर बन्द होते हैं । शब्दों का वेग है । अनीला के आने का शब्द उठता है)

अनीला : लो बस इतनी देर लगी । (चौककर) अरे गये, क्या मुसीबत है ! सदा इसी तरह तग करते है ।

तारा : उन्हें बहुत आवश्यक काम था, अनीला ।

अनीला : (हँसकर) सो तो ठीक है, जीजी । उनको आदत ही ऐसी है । खैर, आइए अब हम चाय पिएँ । (क्राँकरी की खड़-खड़ाहट) लीजिये । ये बादाम है । और आप टोस्ट लेगी ?

तारा : (मुस्कराकर) तुम जो खिलाओगी वह तो मुझे खाना हा पड़ेगा ।

अनीला : (लजाकर) आपकी बड़ी कृपा है ।

(प्यालों की भनभन, घूँट, क्षणिक सन्नाटा)

अनीला : जीजी !

तारा : (चौककर चकित) हाँ.....

अनीला : जीजी, एक बात पूछूँ ?

तारा : (चकित) पूछो ।

अनीला : जीजी, क्या नारी विवाह के बिना रह सकती है ?

तारा : तुम्हारे मन में प्रश्न उठा है, तो नारी अवश्य विवाह के बिना रह सकती है । न रह सकती, तो प्रश्न भी न उठता ।

अनीला : यह तो तार्किक की भाषा है, जीजी ।

तारा : प्रश्न ही तार्किक करता है । नहीं तो नारी विवाह करती है, या नहीं करती, इसकी किसी को चिन्ता क्यों होती है ?

अनीला : जीजी, आप गाँधी जी को इतना मानती हैं । उन्होंने विवाह को धर्म की आड़ कहा है ।

तारा : (एकदम) और प्लेटो ने संस्कृति का आरम्भ बताया है और...लेकिन जाने दो, इसका उल्टा कहने वाले भी अनेक महात्मा और महापुरुष हो गये हैं । किसका वचन मानोगी, अनीला !

अनीला : यही तो मेरा प्रश्न है, जीजी ।

तारा : प्रश्न जहाँ से उठता है वही उसका उत्तर ढूँढ़ो ! एक बार न मिले तो बार-बार ढूँढ़ो । श्रद्धा कभी धोखा नहीं देती । प्रश्न में मचाई है, तो अवश्य उत्तर मिलेगा और वही उत्तर ठीक होगा । तुम गाँधी की बात कहती हो । उन्होंने ईश्वर के बारे में लिखा है—ईश्वर की जो कल्पना तुम्हारे मस्तिष्क में है वही तुम्हारा ईश्वर है ।

अनीला : पर जीजी, क्या यह अराजकता नहीं होगी ?

तारा : जब तक मनुष्य अपने को महत्व नहीं देता तब तक अराजकता का कोई भय नहीं है, अनीला ।

अनीला : (प्रवाहित होकर) निःसन्देह, आप ठीक कहती है, जीजी ! मनुष्य जब अपने को महत्व देता है, तभी विद्वेष, विद्रोह, और कलह का जन्म होता है ।

तारा : लेकिन फिर भी यह महत्व देना कितना स्वाभाविक है, अनीला । इस बात को हमें भूल नहीं जाना है । मुझे ही देख लो, मैं इस बात को समझती हूँ लेकिन फिर भी सदा इसे झुठलाने का प्रयत्न करती रहती हूँ । आज भी मैं प्रभात के पास इमीलिये आर्टी थी कि मैं शंकर को ... शंकर को .. (धीरे-धीरे भावावेश में आती है और फिर एकदम फूट पड़ती है ।

अनीला : (एक दम उठती है । खनखनाहट) जीजी, जीजी !

तारा : (सहसा संभलती हुई) ओह ओह !

अनीला : क्या हुआ, जीजी ! क्या बात हुई ?

तारा : (सँभलकर) कुछ नहीं, अनीला । कुछ नहीं । कभी-कभी अहम्भाव से मैं इतनी व्याकुल हो उठती हूँ कि दौरा पड़

जाता है। प्रभात ठीक कहता था—अज्ञान मनुष्य का शत्रु नहीं है। शत्रु है ज्ञान का दम्भ।

अनीला : (उच्छ्वसित) प्रभात ऐसे कहते थे ?

तारा : हाँ, अनीला। प्रभात बहुत कुछ जानता है और मुझे खुशी है कि वह उस ज्ञान का बोझ अपने सिर पर उठाये नहीं फिरता। उसने मुझसे कहा था—देर हो गई...

अनीला : किसलिए, जीजी ? देर किसलिए हो गई ?

तारा : विवाह के लिए।

अनीला : (चकित) विवाह ! किमका विवाह ?

तारा : मेरा और प्रभात का। (आश्चर्य संगीत, एक गहरा मौन)

अनीला : (स्तम्भित) जीजी ???

तारा : (स्वस्थ स्वर) मैं तुमसे कुछ नहीं छिपाऊँगी, अनीला। ज्ञान को अन्तर में छिपाये रखाना एक बहुत बड़ा दम्भ है। मैं यहाँ इसलिये आई थी कि प्रभात से विवाह करके शकर से बदला लूँगी लेकिन अब वह सम्भव नहीं है और मुझे खुशी है कि वह सम्भव नहीं है...

अनीला : जीजी !

तारा : मैं स्वयं दुखी हूँ तो तुम्हारे जीवन को भी विपादपूर्ण नहीं बनाऊँगी। मैं बलिदान दे सकती हूँ। तुम दोनों में प्रेम है। है न ? (हँसकर) लजा गई। पगली, इसमें लजाने की क्या बात है। तुम दोनों समझदार हो। तुम्हें प्रेम करने का अधिकार है।

अनीला : जीजी, मैं आपका आशीर्वाद चाहती हूँ।

तारा : आशीर्वाद माँगना अपनी किसी कमजोरी को छिपाना होता

है, अनीला ! मनुष्य को अपने आप में इतना विश्वास रखना चाहिये कि जीवन टूट जाये पर विश्वास न टूटे, तब पृथ्वी और आकाश दोनों उस पर आशीर्वाद की इतनी वर्षा करेंगे कि वह आशीर्वादमय हो उठेगा । (तारा उठती है) अच्छा मैं चली । माँ आये तो उनको मेरा प्रणाम कह देना । कब आ रही हैं ?

अनीला : आज ही रात को प्रभात के साथ लौटेंगी । तब तक रुको न, जीजी !

तारा : नहीं अनीला, अब न रुक सकूंगी । अपने विवाह की खबर देना । तब अवश्य आऊँगी । मौ काम छोड़कर आऊँगी ।

(जाती है । किवाड़ बन्द होते हैं । क्षणिक सन्नाटा । अनीला स्वयं बोलती है ।)

अनीला : बाहर कितना माहम, कितनी स्पष्टता, कितना प्रेम और अन्दर कितना द्वन्द्व, कितना संघर्ष...

(शब्द बहुत धीमे और उच्छ्वसित स्वर में कहे गये हैं जैसे अपने अन्तर से बाते करती हो । उनके मिटते-भिटते संगीत उठता है । उसमें संघर्ष की ध्वनि है । उसके मिटते-मिटते तारा का गम्भीर स्वर उठता है । कहानी तारा के अपने कमरे के अन्दर शुरू होती है)

तारा : (गम्भीर स्वगत स्वर) मेरे जीवन का एक और अध्याय समाप्त हो गया । मैं एक बार और अमफल रही । मैंने एक और मात खाई । प्रभात से मैं कितना प्रेम करती थी लेकिन भूटे आदर्श के मोह में पड़कर मैंने उसे खो दिया ।

(सहसा उपचेतना हँसती हुई बोल उठती है)

उप० : (हँसकर) भूटे आदर्श का मोह नहीं वह तुम्हारा अभिमान था और अभिमानी मनुष्य कभी प्रेम नहीं कर सकता ।

तारा : (काँपकर) कौन ? उपचेतना तुम फिर आ गईं ?

उप० : आने को मैं कहाँ जानती हूँ । मैं मनुष्य के अन्दर सोती रहती हूँ । जब वह अपने को धोखा देता है तब मैं जागती हूँ ।

तारा : क्या मैं अब भी अपने को धोखा दे रही हूँ, क्या प्रभात के प्रेम में मेरा हृदय नहीं तड़प रहा है ?

उप० : तुम्हारा हृदय तो तड़प रहा है, परन्तु प्रभात के प्रेम के कारण नहीं !

तारा : तो ?

उप० : शंकर से बदला न ले सकने के कारण ।

तारा : क्या...तुम क्या कह रही हो ?

उप० : मैं वही कह रही हूँ जो है । बोलो, क्या मैं गलत हूँ ?

(पृष्ठभूमि में संगीत)

तारा : (काँपती हुई) शायद, शायद तुम ठीक कह रही हो ।

उप० : (अट्टहास) मैं सदा ठीक कहती हूँ । तुमने शंकर से ज़िम्मे प्रकार मुक्ति पाई, जिस प्रकार तुम्हें महात्मा का प्रेम मिला उसका तुम्हें बहुत बड़ा अभिमान था । इसलिए अलग होकर भी तुमने चाहा कि शंकर तुम्हारे पास आये और जब वह नहीं आया तो तुम क्रोध से भर उठी । और इसी कारण तुमने शंकर को परसों अपने घर से निकाल दिया था ।

तारा : (काँपकर) मैं मानती हूँ । ऐसा ही था । तुम ठीक कहती हो । पर शंकर भी तो.....

उप० : मैं शंकर को नहीं जानती, तुम्हें जानती हूँ । तुम बार-बार अपने को धोखा क्यों देती हो, तुम अपनी हार से ही क्यों हार जाती हो ?

तारा : मैं अपनी हार से हार जाती हूँ ?

उप० : हाँ, हारने पर दुख मानना हार से हारना है । तुम प्रभात से विवाह नहीं कर सकी इसका तुम्हें बहुत बड़ा क्षोभ है । तुमने अनीला को जो आशीर्वाद दिया उसमें भी प्रेम नहीं था ।

तारा : (काँपकर) क्या... तुम क्या कहना चाहती हो ?

उप० : यही कि उसके मूल में द्वेष था, घृणा थी । मैं द्वेष और घृणा को उतना बुरा नहीं समझती जितना उनको छिपाकर महात्मा बनने को ।

तारा : (सुबक उठती है) तुम ठीक कह रही हो । तुम ठीक कह रही हो । लेकिन मैं क्या करूँ ? मुझे कुछ सूझता नहीं । मैं अन्धकार में भटक रही हूँ । मुझे राह दिखाओ बोलो ! (स्वर गूँजता है) बोलो...तुम फिर चली गई ठहरो ! ठहरो (गूँज) अरे, यहाँ तो कोई नहीं, ओह । मैं स्वप्न देख रही थी । कैसा भयकर स्वप्न था ! पर कितना सत्य.....!

(द्वार पर आहट होती है)

तारा : कौन है ?

प्रभु : (शीघ्रता से बोलता है) बेटी, किवाड़ खोलो ! जल्दी खोलो ।

तारा : (पास आता स्वर) क्या है ? क्या है, काका ?

तुलसा : बाहर आकर देखो बेटी, बहुत सुन्दर चीज है ।

(किवाड़ खलते हैं । सब स्वर पास आते हैं)

तारा : क्या चीज है, ओह...यह...यह तो बालक है ! (आश्चर्यमय गहन संगीत) यह तुम्हें कहाँ मिला ?

प्रभु : अपने दरवाजे के बाहर बच्चा-गाड़ी में ।

तारा : (काँपकर) बाहर सड़क पर, इतने जाड़े में ! इसे मुझे दो ।

तुलसा : रखने वाला होशियार था, बेटी । उसने बच्चे को अच्छी तरह गरम कपड़ों में लपेट रक्खा था ।

प्रभु : किसी धनी का जान पड़ता है ।

तारा : कितना सुन्दर है, कितना प्यारा.....!

तुलसा : कैसा बेखबर सो रहा है !

प्रभु : लेकिन जिसने इसे यहाँ रखा है वह कितना जालिम है !

तुलसा : पूरा राक्षस है, कैसे दिन आ गये हैं आजकल ?

तारा : (सहसा जागकर) इसे किमी ने देखा था ?

प्रभु : हाँ, इसे कई लोगों ने देखा है । उममें से एक आदमी तो उस व्यक्ति को पहचानता है जो इसे यहाँ छोड़ गया है ।

तारा : कौन है वह ?

प्रभु : मालिक का नौकर जगतसिंह । (आश्चर्यमय संगीत)

तारा : (चकित) जगतसिंह ?

प्रभु : हाँ, वह आदमी यही कहता था । वह अब पुलिस में रिपोर्ट करने गया है ।

तारा : (एकदम) पुलिस में रिपोर्ट करने गया है ?...ठीक है, उसे जाना ही चाहिये था । मैं भी चिट्ठी लिखती हूँ । तुम अभी पुलिस-स्टेशन चले जाओ । बच्चे को भी लेते जाओ ।

तुलसा : (प्रार्थना का स्वर) बेटी, इसे पुलिस में न भेजो । बड़ा प्यारा बच्चा है । इसे तुम पाल लो ।

तारा : (काँपकर) मैं पाल लूँ ?

प्रभु : हाँ, बेटी । घर में चाँदना हो जायगा । तुम्हारा जी लगेगा । बच्चे बिना घर भूत का डेरा होता है ।

तारा : काका ! (क्षणिक संगीत) नहीं, नहीं, काका । मैं इसे नहीं पाल सकूँगी । इसे ले जाओ, अभी पुलिस में ले जाओ । वह इसे किसी अनाथालय में भेज देगी । मेरा घर अनाथालय नहीं है ।

प्रभु : बेटी, तुम क्या कर रही हो, सोचो तो ?

तुलसा : तुम नहीं पालती तो मुझे दे दो । मैं पाल लूँगी ।

तारा : (पागल-सी) तुम...तुम इसे पालोगी ?

तुलसा : हाँ ।

तारा : तो ले जाओ और साथ ही तुम भी चली जाओ । इस बच्चे को लेकर तुम यहाँ नहीं रह सकतीं ।

तुलसा : (काँपकर) बेटी, बेटी मेरा यह मतलब नहीं था । इस बुढ़ापे में कहाँ जाऊँगी ?

तारा : [उसी तरह क्रोध] इस बुढ़ापे में अगर तुम्हें इस बच्चे को पालने की सूझी है, तो जगह भी सूझ जाएगी । इतने दिन मेरे पास रहते हो गये पर तुम मुझे न समझ सके । जानते हो यह किस का बच्चा है ?

प्रभु : किसी अभागे का है बेटी ।

तारा : अभागा नहीं वह जालिम है, वह राक्षस है, वह पापी है, वह तुम्हारा मालिक है ।

[आश्चर्यमय संगीत]

प्रभु : (काँपकर) मालिक ?

तुलसा : (काँपकर) मालिक ? तो यह मालिक का बेटा है ।

तारा : (चिल्लाकर) ले जाओ इसे मेरे सासने से । दूर हट जाओ तुम सब लोग, स्वार्थी, नीच, कमीने ! (स्वर टूट जाता है)

(मोटर के आने और रुकने का स्वर)

प्रभु : (काँपकर) पुलिस ! बेटी, पुलिस आ गई ।

तुलसा : (काँपकर) और मालिक भी हैं ।

(कोई व्यक्तियों के एक साथ आने और पुलिस के भारी बूटों का स्वर)

थाने० : श्रीमती तारा आप ही है ?

तारा : (संभलकर) जी ।

थाने० : आपसे मुझे कुछ पूछना है ।

तारा : जी, पूछिये ।

थाने० : आप इनको जानती है ?

तारा : ये मेरे पति हैं ।

थाने० : लेकिन ये यहाँ नहीं रहते ।

तारा : (बूढ़) यहाँ नहीं रहते हैं, इसी कारण ये मेरे पति होने से नहीं बच सकते ।

थाने० : क्षमा करिये, मेरा यह मतलब नहीं था ।

तारा : कोई बात नहीं । आप अपना मतलब कहिए ।

थाने० : मुझे खबर मिली है कि सेठ साहब ने अपने बच्चे को नौकर द्वारा यहाँ कहीं सड़क पर रखवा दिया था ।

तारा : मैं इस बारे में कुछ नहीं जानती । हाँ, इनका छोटा बच्चा मेरे पास है । इसकी माँ मर चुकी है इसलिए इसे मैंने माँग लिया है ।

थाने० : आपने माँग लिया है ?

तारा : जी हाँ !

थाने० : आप इसे अपने पाम रखेंगी ?

तारा : माँगा है तो रखूँगी ही । फेंक नहीं दूँगी ।

थाने० : जी, मेरा यह मतलब नहीं है । हम लोगों का काम बड़ा खराब है । बाल की माल निकालनी पड़ती है ।

तारा : ठीक है, पर सोचने की यह बात है कि गाड़ी में मुलाकर बच्चे जो कोई किसी के द्वार पर छोड़ने नहीं जाता ।

थाने : ठीक है, आप ठीक कहती हैं । मुझे खेद है कि आपको कष्ट हुआ । और सेठ-साहब, जाप भी क्षमा करेंगे । आपने जो कुछ कहा था वह बिल्कुल ठीक निकला ।

शंकर : (हल्की हँसी) कोई बात नहीं, आपने अपना कर्तव्य निभाया है । आप से मुझे कोई शिकायत नहीं है । उन्नी मुझे खुशी है कि स्तत्र भाग्न मे आप जैसे अफमर है ।

थाने० : (हँसता है) आपकी कृपा है । आप तो यही ठहरेंगे ।

शंकर : जी हाँ !

थाने० : तो मुझे आज्ञा दीजिये, मैं चलूँ । नमस्कार, क्षमा करिए ।

(जाता है । मोटर का हार्न बजता है । बच्चा रोता है)

तारा : काका, बच्चे के लिये दूध का प्रबन्ध करो ।

प्रभु : अभी जाता हूँ, बेटी ।

तारा : और काकी, तुम बच्चे को अंदर ले जाओ !

लसा : लाओ बेटी । (बच्चा रोता है । चुप कराती है । 'आ आ आ मेरा मुन्ना, राजा बेटा, हाँ आ, बस, बस ।' इसी प्रकार

पुकारती हुई अन्दर जाती है । स्वर दूर होता हुआ समाप्त हो जाता है ।)

तारा : अब आप भी जाइए ।

शंकर : (विनम्र) तारा !

तारा : कुछ कहना है ? कहिए ।

शंकर : मुझे कुछ नहीं कहना है, तारा । मैं केवल क्षमा चाहण हूँ । तुम बहुत बड़ी हो तारा, बहुत बड़ी ! मैं तुम्हारे योग्य नहीं हूँ । मैं पापी हूँ । मुझे पाप से उबार लो । मेरी रक्षा करो । यह तुम ने क्या किया ?

तारा : (गम्भीर) मैंने वही किया जो उचित लगा, लेकिन इसके आगे मैं कुछ नहीं कर सकती । आपका मार्ग मेरे मार्ग में भिन्न है । क्षणिक भावना के वश होकर मैं कोई ऐसा काम नहीं करना चाहती जिसके लिए हमें आगे चलकर पछताना पड़े ।

शंकर : तारा, मैं सच कहता हूँ । मेरी बात का विश्वास करो मुझे अपने पिछले जीवन पर बहुत ग्लानि हो रही है । मुझे अपनी बात को प्रमाणित करने का अवसर दो ।

तारा : अवसर देने वाली मैं कौन होती हूँ ?

शंकर : नहीं तारा, मुझे विश्वास है कि तुम वह नहीं चाहती जो तुम कह रही हो ।

तारा : (कुछ तेज) मैं जो चाहती हूँ वही कहती हूँ । वही मेरी मान्यता है । आपको जाना ही होगा ।

शंकर : तुम भी मेरे साथ चलो, तारा ।

तारा : कभी नहीं ।

शंकर : तो फिर तुमने मुझे जेल जाने से क्यों रोका ?

तारा : मैंने आपको नहीं रोका । मैंने केवल भारत के एक भावी नागरिक को जीने का अवसर दिया है ।

शंकर : लेकिन वह मेरा पुत्र है ।

तारा : कभी नहीं । आपका पुत्र होता तो आप उसे इस प्रकार मेरे द्वार पर छोड़ जाते ?

शंकर : तारा.....!

तारा : आप अब जा सकते हैं ।

शंकर : देखो, तारा ! तुम अब सीमा से बढ़ रही हो ।

तारा : मेरे लिये क्या सीमा है, क्या नहीं है, यह मैं जानती हूँ, आप नहीं !

शंकर : बस तारा ! मैं यह सब कुछ सुनने का आदी नहीं हूँ । मेरा पुत्र मुझे लादो । मैं उसे ले जाऊँगा ।

तारा : (हँस कर) बस, इसी बूते पर मुझे अपने साथ चलने की कहते थे ।

शंकर : (जोर से) तारा !

तारा : अपने पुत्र को ले जाओगे ?

शंकर : हाँ !

तारा : इतनी शक्ति है ?

शंकर : हाँ !

तारा : लो ले जाओ, (पुकार कर) काकी बच्चे को इधर ले आओ ।
(संगीत उठता है)

शंकर : (एकदम) नहीं-नहीं तारा, मेरा यह मतलब नहीं था । मैं

नहीं ले जाना चाहता । मैं क्षणिक भावना के वश होकर उसका जीवन नहीं बिगाड़ना चाहता । मैं पापी हूँ । मैं न जाने कब क्या कर बैठूँ ? (हँधा स्वर) तारा, मैं जाता हूँ । मुझे क्षमा कर दो । तुम जीत गईं । मैं हार गया । मैं जाता हूँ ।

(शीघ्रता से जाता है)

तारा : (क्षणिक सन्नाटा, उच्छ्वसित स्वर) मैं जीत गई ! नहीं, नहीं जीते तुम । मैं तो जीतकर भी हार गई !

(तुलसा का बच्चे को पुचकारते हुए प्रवेश)

तुलसा : क्या था, बेटी ?

तारा : कुछ नहीं, बच्चे को मुझे दे दो और उसके स्नान का प्रबन्ध करो ।

तुलसा : अभी करती हूँ । लो इसे, लो बेटी । कैसा हँसता है जैसे चाँद हो, जैसे कमल खिला हुआ हो । हाँ आँ...आँ आ... (स्वर दूर जाता है)

तारा : हँसते हो, जानते हो मैं कौन हूँ ? तुम्हारे कारण आज जीवन की बाजी हार गई हूँ लेकिन नहीं, मैं हारकर भी जीती हूँ... मैं जीती । मैंने तुम्हें जीता है । हँसो ! (बच्चे की हँसी) और हँसो मेरे देश के भावी नागरिक, और हँसो मनु पुत्र... इतना कि भाग विश्व तुम्हारी हँसी में डूब जाये !

[बच्चा हँसता है, तारा हँसती है और गाती है]

लोरी का स्वर

[गीत का स्वर पृष्ठभूमि में जाता है । हँसी का स्वर उठता है, फिर गीत की कड़ी गूँजती है । फिर हँसी और सशान्ति का संगीत]



